प्राणायाम

अर्थात्

श्वास-विज्ञान

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

गंगा-पुस्तकमाला का पैंसठवाँ पुष्प

प्राणायाम

अर्थात्

श्वास-विज्ञान

(योगी रामाचारक-लिखित 'साइंस ऑफ़् ब्रेथ' का हिंदी-रूपांतर)

अनुवादकर्ता
ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द १।=)] सं० १९८३ [सादी ॥।=)

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

—○—

मुद्रक
श्रीमहादेवप्रसाद श्रीवास्तव
ताल्लुक़ेदार-प्रेस
लखनऊ

श्रीमान् माननीय राजा सर रामपालसिंहजू देव के० सी० आई० ई०,
कुर्रीसुदौली-नरेश समीपेषु

Ganga Fine Art Press Lucknow.

समर्पण

श्रीमान् माननीय राजा सर रामपालसिंहजू देव
के० सी० आई० ई०, कुर्रीसुदौली-
नरेश समीपेषु

राजन्,

श्रीमान् सर्वदा देश-हित की चिंता और चेष्टा में रत रहते हैं। इसी में श्रीमान् ने अपने स्वास्थ्य और स्वार्थ, दोनों को भुला दिया है। अतएव अपने विश्वास के अनुसार, देश-हित के प्रधान साधन इस 'प्राणायाम' को, श्रीमान् के उसी व्रत के अनुकूल समझकर, सेवा में सादर समर्पित करता हूँ।

श्रीमान् का भक्त
प्रसिद्धनारायण

भूमिका

(द्वितीयावृत्ति)

मुझे आज बड़े हर्ष के साथ यह प्रकट करने का अवसर मिला है कि इस ग्रंथ की प्रथमावृत्ति की सारी प्रतियाँ बहुत शीघ्र ही निकल गईं। जिन लोगों ने इस पुस्तक का सावधानी से अध्ययन और इसमें दी हुई कसरतों का कुछ भी अभ्यास किया, वे इसके प्रशंसक बन गए। मुझे इस बात से बहुत ही संतोष हुआ कि इस पुस्तक के साधनों द्वारा हमारे बहुत-से देशभाइयों ने अपने खोए हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करके, शरीर को पूर्णतः बलिष्ठ बना लिया। कितने ही लोग तो इसके द्वारा बल, शक्ति और दृढ़ता प्राप्त कर, अपनी छाती पर भारी-भारी पत्थर रखकर तुड़वाने लगे। इन्हीं कारणों से इस पुस्तक की माँग बहुत ज्यादा हुई। इसलिये मुझे इस बात का बहुत बड़ा खेद रहा कि प्रथमावृत्ति की पुस्तकों के चुक जाने पर भी, वर्षों तक इसका दूसरा संस्करण न निकल सका। अब अनेक असुविधाओं के रहते हुए भी, अपने देशवासियों की माँग पूरी करने के लिये, इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित कराया गया है। इस आवृत्ति में कुछ भी अधिक परिवर्तन नहीं है। हाँ, कहीं-कहीं भाषा का सुधार कर दिया गया है। आशा है, इस पुस्तक द्वारा लोग दिन-पर-दिन अधिकाधिक लाभ उठावेंगे। ॐ शांतिः।

बनारस,
ता० ३० जुलाई, सं० १९२० ई०

प्रसिद्धनारायणसिंह

भूमिका

(प्रथमावृत्ति)

जब श्रीमान् राजर्षि उदयप्रतापसिंहजू देव सी० एस० आई०, भिनगा-नरेश जीवित थे, मुझ पर बड़ी कृपा करते थे। श्रीमान् ने मुझे अपना शिष्य बनाकर वर्षों अपने धार्मिक, वेदांतिक, सामाजिक और राजनीतिक सिद्धांतों का उपदेश किया। फिर मेरी परीक्षा भी ली गई। तब उन्होंने क्षत्रिय-जाति के सुधार-संबंध में मुझसे काम लेना प्रारंभ किया। जहाँ तक मुझसे बन पड़ा, मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया। जब कभी वह मुझ पर बहुत प्रसन्न होते, तो कहा करते कि "तुम्हें ऐसी चीज़ दूँगा कि तुम निहाल हो जाओगे, और जीवन-पर्यंत समझोगे कि किसी के द्वारा हमें यह निधि मिली है।" मुझको तो उस समय उनकी संगति ही और उनके शिष्य होने का सौभाग्य ही सब कुछ था। एक दिन मेरे भतीजे ठाकुर महादेवसिंह के द्वारा, जो उनके यहाँ ड्योढ़ी पर मुंशी थे, उन्होंने दो पुस्तकें मेरे पास भेज दीं। दोनों ही योग-विषयक थीं। इधर-उधर उलट-पलटकर मैंने उन्हें रख छोड़ा। मन में यह बात आई कि जब कभी सुअवसर मिलेगा, इनका

अभ्यास करूँगा। पुस्तकें भेजने के बाद ही से राजर्षि ने मुझे उदासीन करना भी प्रारंभ किया। अंत में मेरा संबंध उनके कामों से बहुत कुछ शिथिल हो गया। वह स्वयं तो समय आने पर ब्रह्मपद-लीन हो गए, और मैं अपने गृह-कार्यों में पड़ा रहा। घर पर एक बार मैंने एक पुस्तक के अनुसार श्वास-क्रिया का अभ्यास करना प्रारंभ किया, और स्वास्थ्य में मुझे बहुत कुछ लाभ प्रतीत होने लगा। पर, फिर, थोड़े ही दिनों में वह अभ्यास छूट गया। फिर यही सोचा, सुयोग आने पर इसे करूँगा। मेरा स्वास्थ्य बहुत दिनों से खराब था; वह दिन-पर-दिन और बिगड़ता गया। जो पीड़ाएँ मुझे सताती थीं, उनके नाम ये हैं—बदहज़मी, कांस्टीपेशन (बद्धकोष्ठ), कलेजे का बेकार हो जाना, प्रमेह, बवासीर और कोष-वृद्धि। ज्यों-ज्यों उमर ढलने लगी, ये पीड़ाएँ दिन-पर-दिन अधिक दुःख देने लगीं।

इधर इस साल मुझे माननीय राजा सर रामपालसिंहजू देव के० सी० आई० ई० की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शरीर की तो यह दशा; और मस्तिष्क की भी ऐसी दशा हो गई थी कि घंटे-भर भी मैं जी लगाकर मानसिक कार्य नहीं कर सकता था। काम करने का भी प्रधान उद्देश्य क्षत्रिय-कॉलेज की स्थापना में श्रीमान् की सहायता करना था। जी में आया कि चलता तो हूँ, पर इस शरीर

और इस मन से मैं क्या कर सकूँगा ? पर तो भी हिम्मत बाँधकर चल दिया। अपने साथ राजर्षि-प्रदत्त पुस्तकों को भी ले लिया। अपने काम में विफल न होऊँ, इसलिये गाड़ी ही पर श्वास-क्रिया का अभ्यास भी मैंने प्रारंभ कर दिया। यहाँ आने पर श्रीमान् राजा साहब का बर्ताव मेरे साथ ऐसा होने लगा, और खाने-पीने एवं रहने का ऐसा सुयोग आया कि जिस आशा से मैंने उस अभ्यास को टाल रक्खा था, उसका अवसर मुझे प्राप्त हो गया। मैं अभ्यास करने लगा। अभी केवल छः महीने के क़रीब मुझे अभ्यास करते हुए हैं। इन्हीं छः महीनों में कोष-वृद्धि को छोड़कर और मेरे सारे रोग समूल नष्ट हो गए, एवं कोषवृद्धि में भी कमी है। चित्त की दशा भी बहुत ही अच्छी है। इन लाभों को पाकर मुझे राजर्षि के वचन स्मरण आए। मैं सचमुच निहाल ही हो गया हूँ।

अपने देश की ओर जब दृष्टिपात करता हूँ, तो अधिकांश मनुष्यों को अपने ही समान "शरीरं व्याधिमंदिरम्" वाला पाता हूँ। ऐसी दशा में मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि जिस वस्तु से मैंने लाभ उठाया है, उसे अपने देशवासियों के सम्मुख उपस्थित कर दूँ। यदि हमारे देशवासियों का होनहार अच्छा होगा, तो वे अवश्य अपने ही देश के प्रख्यात उस योग-मार्ग को ग्रहण करने में आनाकानी न करेंगे, जिसे बहुत दिनों से लोगों ने भुला रक्खा है।

जिस पुस्तक का मैंने अनुवाद किया है, और जिसे आपके सम्मुख उपस्थित करता हूँ, वह योगी रामाचारक महोदय की योग-विषयक शिक्षा है, जो, अमेरिका-निवासी शिष्यों के प्रति, अँगरेज़ी-भाषा में है। अमेरिकन पश्चिमी विद्वान् किसी के कहने ही-मात्र से किसी बात को स्वीकार नहीं कर लेते। जब कोई बात साइंस के रूप में उनके चित्त पर बिठलाओगे, तभी उस बात को वे मानेंगे; नहीं तो नहीं। योगी रामाचारक ने भी योग-शास्त्र का साइंस ही के रूप में वर्णन किया है, इसे साइंस सिद्ध कर दिया है। उनकी पहली पुस्तक का नाम (जिसका यह अनुवाद है) "योगी साइंस ऑफ़् ब्रेथ" है।

हमारे देशवासियों के विचार भी पश्चिमी लोगों के विचारों के ढर्रे पर चल पड़े हैं। इनके चित्त पर भी पूर्वी ढंग से कही बातें नहीं बैठतीं। सांख्य, वेदांत, योग, न्याय आदि दर्शन न तो इनकी समझ ही में आते हैं, और न उन्हें अच्छे ही लगते हैं। वे ही शास्त्र-पुराण हैं, जिनकी ओर हम कानी आँख से भी नहीं ताकते; पर जब उन्हीं शास्त्र-पुराणों के सिद्धांतों को मिसेज़ एनी बीसेंट या और कोई विद्वान् पश्चिमी ढंग से कहने लगता है, तो उन पर मुग्ध हो जाते हैं।

यही बात इस योग-क्रिया और योगशास्त्र के संबंध में भी कही जा सकती है। पातंजल-योगसूत्र, शिव-संहिता,

घेरंड-संहिता आदि कई ग्रंथों को मैंने देखा; पर एक बात भी समझ में न आई। परंतु योगी रामाचारक के उपदेश, जो पश्चिमी शिष्यों के लिये पश्चिमी ढंग पर हैं, हृदय में अंकित हो जाते हैं। मैं आशा करता हूँ कि जैसा इनका प्रभाव मुझ पर पड़ता है, वैसा ही हमारे देशवासी भाइयों पर भी पड़ेगा।

मैंने इस पुस्तक का अनुवाद करने में भी कहीं पुराने ढंग के वर्णन और पुरानी नामावलियों से सहायता नहीं ली है, किंतु ध्यान केवल-मात्र अनुवाद ही पर रहा है। श्वासक्रिया और तालयुक्त श्वासक्रिया, यही नाम मैंने रक्खे हैं; प्राणायाम नाम रखने का हौसला मैंने नहीं किया। इसी प्रकार योग के आसन और मुद्रा को आसन और मुद्रा न लिखकर कसरत और अभ्यास ही नाम दिया है। पुरानी नामावलियाँ देने की चेष्टा ही नहीं की गई। हाँ, कहीं-कहीं कोष्ठकों में पुराने नाम, प्राचीन योग का स्मरण दिलाने के लिये, दे दिए गए हैं। इस पुस्तक में पुराने अभ्यासों को भी योगी रामाचारक ने ज्यों-का-त्यों नहीं, वरन् उन्हें देश-काल के अनुकूल संक्षिप्त कर दिया है।

मेरा तो यह विश्वास है कि इस पुस्तक का अध्ययन करके, इसके अनुसार अभ्यास करने से, किसी को भी शारीरिक और मानसिक त्रुटियों की शिकायत करने का अवसर

न मिलेगा। योगीजी और हमारे पुराने शास्त्र तो कहते हैं कि इसके द्वारा जैसे शारीरिक और मानसिक विकास होते हैं, वैसे ही आध्यात्मिक विकास भी होता है। इनके कहने पर मेरा भी विश्वास है। केवल कहने ही पर नहीं, वरन् शारीरिक और मानसिक विकास और पुष्टि का तो मैं स्वयं थोड़ा बहुत अनुभव भी कर चुका हूँ।

यदि हमारे देशवासियों की रुचि इधर हुई, तो मैं थोड़े ही दिनों में, उन्हीं योगीजी के अँगरेज़ी में लिखे हुए हठ-योग-नामक ग्रंथ का अनुवाद लेकर आप लोगों की सेवा में उपस्थित होऊँगा।

राज कुर्रीसुदौली,
ज़िला रायबरेली
ता० १७ एप्रिल, सन् १९१७ ई०

प्रसिद्धनारायणसिंह

विषय-सूची

प्राणायाम

अर्थात्

श्वास-विज्ञान

——:※:——

पहला अध्याय

जय हो

आजकल हमारे भारतवर्ष का साधारण जनसमुदाय योग से इतनी दूर हट गया है कि इसकी ओर लोगों के हृदय में नाना प्रकार के कुभाव उत्पन्न हो गए हैं। योगी नाम धारण करनेवाले नाना प्रकार के मनुष्य दिखलाई पड़ते हैं। कहीं कोई गेरुआ पहने, सारंगी लिए हुए, भरथरी, गोपीचंद और महादेवजी के गीत गाता फिरता है, और अवसर पाकर नाना प्रकार के दंद-फंद से लोगों को ठगता फिरता है; कहीं कोई गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी-वेश में घूमता है, और मुँह से अथवा गले से शालग्राम की मूर्ति निकाल-कर अपनी सिद्धता दिखलाता और भोलेभाले मनुष्यों को अपना शिकार बनाता है। एकआध जगह ऐसे भी मनुष्य पाए जाते हैं, जो काँटे की शैया बनाकर उस पर सोते हैं, और अपने महत्त्व का रोब जमाते हैं; कहीं कोई पैर ऊपर

और सिर नीचे करके लटका हुआ दिखलाई पड़ता है, और उसके साथी दर्शकों से पैसा माँगा करते हैं; कहीं कोई ऊद्ध्र्वबाहु बना हुआ है, और अपनी बाँह को बर्षों से ऊपर उठाए-उठाए सुखा डाला है, जिसे देखकर दर्शकों को दया आती है, और वे कुछ दे देते हैं। मेले-ठेले में ऐसे आदमी भी दिखलाई देते हैं, जो नाना प्रकार से अपने अंगों को तोड़ते-मरोड़ते और योग के चौरासी आसन सिद्ध करने का स्वाँग दिखलाते हैं। ये और अनेक तरह के दूसरे लोग, योग के नाम पर, लोगों से पैसा कमाते और योग को बदनाम करते हैं। ऐसे भी लोग मिलते हैं, जिन्होंने अपनी अँतड़ी आदि पर योग द्वारा कुछ थोड़ा अधिकार जमा लिया है, और कभी-कभी उनकी उलटी गति दिखाकर लोगों के हृदय में घृणा और योग से भय उत्पन्न कर देते हैं। पर ये लोग योगी नहीं हैं, योग को बदनाम करनेवाले ठग या कुछ योग का उलटा-पुलटा थोड़ा अभ्यास किए हुए सनकी आदमी हैं। जैसे भिखमंगा नट पगड़ बाँधे और उसमें एक भद्दा नश्तर खोंसे लोगों के फ़स्द और तूंबी लगाता और कानों का मैल निकालता फिरता है, पर चिल्ला-चिल्लाकर "बैद-बैद" कहता हुआ गाँवों की गलियों में अपने को वैद्यराज ज़ाहिर करता है; वैसे ही ये धूर्त गेरुआ पहने और नाना प्रकार का ढोंग दिखाते हुए लोगों को छलते फिरते हैं। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है!

इन्हीं लोगों को देखकर और लोग योग से बहुत दूर हट गए हैं। जो लोग पढ़े-लिखे हैं, और सभ्य बनने का दावा करते हैं, वे योग की तरफ़ आँख उठाकर देखते भी नहीं। यदि किसी सच्चे योगी का कुछ समाचार भी वे सुन पाते हैं, तो यही समझकर उसकी ओर से लापरवा हो जाते हैं कि होगा कोई भूला हुआ, व्यर्थ स्वप्न देखने में अपना जीवन बितानेवाला।

किंतु योग ऐसी घृणा की चीज़ नहीं है। हमारे भारतवर्ष में और दूसरे पूर्वी देशों में भी प्राचीन काल से ऐसे मनुष्य होते आए हैं, जिन्होंने अपने बहुमूल्य समय और चित्त को मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में लगाया है। पुरुषार्थी खोजियों के शताब्दियों का अनुभव गुरु-शिष्य-परम्परा से एकत्रित होता चला आया है, और क्रमशः एक निश्चित योगशास्त्र या योगदर्शन बन गया है। इन्हीं खोजों को 'योग' नाम दिया गया है। यह शब्द संस्कृत 'युज्' धातु से, जिसका अर्थ जुटना है, बना है। इसका अर्थ भिन्न-भिन्न महाशयों ने भिन्न-भिन्न किया है; पर मेरी समझ में तो यही अच्छा मालूम होता है कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिये प्राकृतिक नियमों से जुट जाना ही योग है, अथवा शरीर और मन को अपने संकल्प के अनुवर्ती बनाने के उद्योग में जुट या लग जाना योग है। हमारे देश में प्राचीन काल से

यह कहावत चली आती है कि इसके आदि आचार्य महादेवजी हैं। पतञ्जलि मुनि ने दर्शन या शास्त्र-रूप में इसका वर्णन किया है, जो छः शास्त्रों में से एक है। भारतवर्ष की कौन-सी श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, शास्त्र या पुराण है, जिसमें इसका महत्त्व न गाया गया हो।

योग कई शाखाओं में विभक्त है। इसकी शिक्षा की दौड़ शरीर को अपने संकल्प के अनुकूल बनाने से लेकर वहाँ तक है, जहाँ उच्चातिउच्च आध्यात्मिक उन्नति करके परमपद का ब्रह्मानंद प्राप्त हो जाता है। इस पुस्तक में हम योग के बहुत उच्च भावों की ओर न जायँगे। हाँ, जहाँ कहीं श्वास-विज्ञान से उच्च भावों का लगाव है, वहाँ विवश होकर कुछ थोड़ा बहुत कहना ही पड़ेगा। यह श्वास-विज्ञान बहुत जगहों पर योग में सम्मिलित है। यद्यपि इसका प्रधान उद्देश्य शारीरिक उन्नति और शरीर को मन के अनुकूल बनाना है, तथापि इसका मानसिक पटल भी है, और यह आध्यात्मिक उन्नति के क्षेत्र में भी प्रवेश कर जाता है।

भारतवर्ष में योग के बड़े-बड़े शिक्षा-स्थल हैं, जहाँ इस देश के सहस्रों प्रधान व्यक्ति इस कार्य में लगे हुए हैं। बहुत-से लोग तो इस योग ही को अपना जीवन समझते हैं। उच्च और शुद्ध योग-शिक्षा तो बहुत थोड़े आदमियों को प्राप्त होती है; साधारण जन इसके छिलके और उच्छिष्ट ही से तृप्त हो जाते हैं। भारतवर्ष में ऊँची शिक्षाओं को छिपाने का

बड़ा भारी रिवाज़ है। परंतु अब पश्चिमी शिक्षा का प्रबल प्रभाव पड़ रहा है, और जो शिक्षा पहले इने-गिने थोड़े-से मनुष्यों को दी जाती थी, वह अब खुले आम सबको मिल सकती है, जो उसके ग्रहण करने के उत्सुक हों। पूर्व और पश्चिम, दोनों एक में जुटते जाते हैं, और इस जुटाव से दोनों का लाभ हो रहा है, और एक दूसरे पर प्रभाव पड़ रहा है।

हिन्दू योगियों ने श्वास-विज्ञान अर्थात् प्राणायाम पर बहुत ही अधिक ध्यान दिया है। क्यों ? यह इस पुस्तक के पढ़नेवालों को आगे चलकर साफ़ मालूम हो जायगा। बहुत-से पाश्चात्य लेखकों ने भी श्वास के विषय में पुस्तकें लिखी हैं। यहाँ भी योग पर प्राचीन पुस्तकें हैं। परंतु इन प्राचीन पुस्तकों में योग की बातें पुराने ही ढंग से लिखी गई हैं, जो आजकल के शिक्षित भारतवासियों के चित्त पर बहुत ही कम प्रभाव डालती हैं। इसलिये यह पुस्तक इस ढंग से संक्षेप में, और सरल भाषा में, लिखी गई है कि योगियों के श्वास-विज्ञान से अभिज्ञता हो जाय और साथ-ही-साथ योगियों के प्रधान-प्रधान श्वास-सम्बन्धी अभ्यास करने की भी शिक्षा मिले। इसमें पूर्वी और पश्चिमी, दोनों विचार दिए गए हैं, और यह दिखलाया गया है कि एक विचार का दूसरे से कैसे ठीक-ठीक मेल खाता है। इसमें साधारण शब्दों का ही प्रयोग किया

गया है। योग के रूढ़ि-शब्द प्रायः छोड़ दिए गए हैं, जिससे समझने में सरलता हो।

इस पुस्तक के पहले भाग में श्वास-विज्ञान का शारीरिक प्रयोग वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् मानसिक विषयों पर उसके लगाव का विचार किया गया है, और अन्त में इसके आध्यामित्क सम्बन्ध का दिग्दर्शन-मात्र करा दिया गया है।

हम इस बात को प्रकट करने में आप लोगों से क्षमा-प्रार्थी हैं कि हमें इस बात का संतोष है कि इतने योगज्ञान को हम केवल इन थोड़े-से पृष्ठों में भर देने में समर्थ हुए हैं, और वह भी ऐसे शब्दों और नामों के द्वारा, जो जिस किसी को भी समझ में आसानी से आ सकते हैं। हमें यदि भय है, तो केवल इसी बात का कि इसकी सरलता और सादगी ही देखकर लोग इससे कहीं मुँह न फेर लें कि यह तो ध्यान देने-योग्य बात ही नहीं है; क्योंकि इसमें गम्भीर, गूढ़ और अबोध्य कोई चीज़ है ही नहीं। किंतु भारतवर्ष के सुदिन आनेवाले हैं, इसलिये मैं आशा करता हूँ कि भारतवर्ष अवश्य इस ओर ध्यान देगा।

हम अपने पाठकों का आन्तरिक आशीर्वाद द्वारा स्वागत करते हैं कि आपकी जय हो, और आप बैठकर सावधानी से योगी के श्वास-विज्ञान का पहला पाठ सीखिए।

दूसरा अध्याय

श्वास ही जीवन है

जीवन पूर्णतः श्वास-क्रिया पर अवलम्बित है। श्वास ही जीवन है। विचारों की सरणी और नामावलियों में चाहे पूर्वी और पाश्चात्य विद्वान् कितना ही भिन्न हों, पर इन मूल सिद्धान्तों में दोनों एकमत हैं।

श्वास लेना ही जीना है, और विना श्वास के जीवन नहीं है। केवल उच्च श्रेणी ही के जीव-जन्तु जीवन के लिये श्वास पर अवलम्बित नहीं हैं, वरन् नीची श्रेणी के जन्तुओं को भी जीने के लिये अवश्य श्वास लेनी पड़ती है। पौदों को भी वैसे ही, लगातार जीवन के लिये, हवा का आश्रय लेना पड़ता है।

नवजात शिशु एक लम्बी, गहरी साँस खींचता है, उसको थोड़े अर्से तक, जीवनदायिनी शक्ति को खींचने के लिये, रोक रखता है, और तब एक लम्बी साँस छोड़ता है। और, अहा! उसका संसार का जीवन शुरू हो जाता है। वृद्ध मनुष्य निर्बल श्वास छोड़ता है, साँस लेना बन्द कर देता है, और बस, उसके जीवन का अन्त है। नवजात शिशु की पहली धीमी श्वास से लेकर मरते हुए मनुष्य की

अन्तिम निर्बल श्वास तक केवल श्वास लेने की एक ही लम्बी कहानी जारी रहती है। जीवन केवल श्वासों की ही एक शृङ्खला है।

शरीर की क्रियाओं में साँस लेना अत्यन्त प्रधान क्रिया है; क्योंकि वस्तुतः दूसरी क्रियाएँ इसी के आश्रित रहती हैं। मनुष्य भोजन के विना कुछ समय तक जी सकता है, पानी के विना उससे भी लघुतर समय तक जी सकता है; परन्तु विना श्वास लिए उसका जीवन केवल कतिपय क्षणों ही तक रह सकता है।

जीवन के लिये मनुष्य केवल श्वास पर अवलम्बित ही नहीं है, प्रत्युत लगातार जीवट और बीमारियों से छुटकारा पाने के लिये उसे ठीक-ठीक श्वास लेने की आदत का बहुत बड़ा सहारा लेना पड़ता है। श्वास लेने की शक्ति के ऊपर सावधानी से नियंत्रण रखना, हमारे इस सांसारिक जीवन को अधिकाधिक जीवट और विकारों के दमन की शक्ति देकर, बहुत बढ़ा देगा। इसके विपरीत असावधानी और लापरवाही से श्वास लेना हमारे जीवट को घटाकर और हमें रोगों का निशाना बनाकर हमारे जीवन को घटा देगा।

मनुष्य को, उसकी असली अवस्था में, श्वास लेना सिखलाने की आवश्यकता न थी। छोटे-छोटे जन्तुओं और बच्चों की भाँति वह स्वाभाविक और उचित रीति से श्वास लेता था, जैसी प्रकृति की इच्छा थी। परंतु सभ्यता ने उसे इस

और अन्य विषयों में क्या से क्या कर दिया ! उसने चलने, बैठने और खड़े होने के अनुचित तरीके धारण कर लिए, जिन्होंने उससे स्वाभाविक और ठीक रीति से श्वास लेना छीन लिया। इस तरह उसने सभ्यता का मूल्य बहुत बड़ी चीज़ दे डाली। जंगली मनुष्य आज भी असली ढंग से साँस लेता है, यदि सभ्य मनुष्यों की आदतें उसे भी जाकर भ्रष्ट न कर डालें।

सभ्य मनुष्यों में ठीक-ठीक साँस लेनेवालों का औसत प्रतिसैकड़ा बहुत ही कम है, और परिणाम में सिकुड़ी हुई छातियाँ, झुके हुए कंधे और साँस लेने के यंत्रों में भयंकर बीमारियों की वृद्धि—जिसमें वह भीषण राक्षस, जिसे क्षयी कहते हैं, सम्मिलित है—देखने में आती हैं। विख्यात-विख्यात प्रमाणिक पुरुषों ने कहा है कि ठीक-ठीक साँस लेनेवालों की एक पीढ़ी भी मानव-समुदाय को पुनर्जीवन दे सकती है, और रोग ऐसा दुर्लभ हो सकते हैं कि उन्हें देखकर मनुष्य आश्चर्य में पड़ जाय कि यह कौन-सी अद्भुत बात देखने में आ गई। चाहे पाश्चात्य दृष्टि से देखें चाहे पूर्वी, ठीक-ठीक साँस लेने के साथ तंदुरुस्ती का संबंध तत्काल देख और समझ पड़ता है।

पश्चिमी शिक्षा यह दिखलाती है कि शारीरिक स्वास्थ्य ठीक-ठीक साँस लेने पर विशेष रूप से अवलम्बित है। पूर्वी आचार्य लोग अपने पश्चिमी भाइयों के कथन को केवल ठीक ही नहीं स्वीकार करते, वरन् यह भी कहते हैं कि उचित

श्वास लेने की आदत से—श्वास-विज्ञान के समझने और अभ्यास करने से—शारीरिक लाभों के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ, सुख, आत्मसंयम, निर्मल दृष्टि, सदाचार आदि की प्राप्ति होती है, यहाँ तक कि उसकी आध्यात्मिक उन्नति भी होती जाती है। इसी विषय पर पूर्वी आचार्यों ने शास्त्र-के-शास्त्र रच डाले हैं। कहाँ तक कहें, इसका अभ्यास करने से आश्चर्य-जनक उन्नति देख पड़ेगी।

इस पुस्तक में योगियों का श्वास-विज्ञान बताया जायगा, जिसमें केवल पश्चिम की ही विद्या नहीं, किंतु इस विषय का आधिदैविक पटल भी सन्निविष्ट है। यह केवल शारीरिक स्वास्थ्य का ही मार्ग, पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार लंबी साँस आदि के द्वारा, नहीं बतलाता; किंतु इस विषय के उन गूढ़ भावों में भी जाता है, जो पाश्चात्यों को कम ज्ञात हैं; और यह भी दिखलाता है कि कैसे हिंदू योगी अपनी मानसिक शक्तियों को बढ़ाकर अपने शरीर पर अधिकार जमाता और श्वास-विज्ञान द्वारा अपने स्वभाव के आध्यात्मिक भाग को पुष्ट एवं उन्नत करता है।

योगी ऐसे-ऐसे अभ्यास करता है, जिनसे वह अपने शरीर पर अधिकार जमा लेता है, और अपने शरीर के किसी अंग या अवयव में अधिक जीवन या प्राण की धारा बहा देता है, जिससे वह अंग या अवयव सुदृढ़ और बलवान हो जाता है। वह उन सब बातों को जानता है, जिन्हें उसका

पश्चिमी विज्ञानी ठीक-ठीक साँस लेने के शारीरिक प्रभाव के विषय में जानता है। परंतु योगी यह भी जानता है कि हवा में ऑक्सिजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन के अलावा और भी कुछ चीज़ अधिक है, जिसके द्वारा रुधिर में ऑक्सिजन पहुँचाने के अलावा कुछ और भी उत्तम कार्य साधा जाता है। योगी "प्राण" के विषय को भी जानता है, जिससे उसका पश्चिमी भाई बिलकुल अनभिज्ञ है। वह शक्ति के उस महान् तत्त्व (प्राण) के व्यवहार की विधि और नियमों को भली भाँति जानता है। वह अच्छी तरह जानता है कि इस प्राण का मनुष्य के शरीर और मन पर क्या प्रभाव पड़ता है। वह जानता है कि नियमित श्वास (प्राणायाम) द्वारा मनुष्य अपने को प्रकृति के राग में जोड़ सकता है, और इस प्रकार अपनी गुह्य शक्तियों को जगा सकता है। वह जानता है कि नियमानुकूल श्वास द्वारा मैं केवल अपने और दूसरों के रोगों को ही नहीं दूर कर सकता, किंतु भय, चिड़चिड़ापन और नीच आदतों को भी निकालकर दूर फेंक सकता हूँ।

इन्हीं बातों का सिखाना इस पुस्तक का उद्देश्य है। हम इसमें थोड़े ही अध्यायों में, संक्षिप्त विवरण और संकेत देंगे, जिनका विस्तार बड़ी-बड़ी पोथियों में हो सकता है। हम आशा करते हैं कि हमारे पाठकों का मन योगी-श्वास-विज्ञान के महत्त्व की ओर प्रेरित होगा।

तीसरा अध्याय

श्वास-क्रिया पर स्थूल विचार

इस अध्याय में हम पश्चिमी वैज्ञानिकों के स्थूल विचारों का वर्णन करेंगे, और श्वास लेनेवाले अवयवों की क्रिया और मनुष्य के शरीर-रूपी यंत्र में श्वास कौन-सा कार्य संपादित करती है, इस विषय में कहेंगे। इसके पश्चात् के अध्यायों में हम पूर्वी आचार्यों के अधिक विचारों और परीक्षा-सिद्ध सिद्धांतों का वर्णन करेंगे। पूर्वी अचार्य अपने पश्चिमी भाइयों के विचारों और सिद्धांतों को स्वीकार करते हैं, जिनको वे शताब्दियों पहले से जानते थे, और अपनी खोज द्वारा बहुत-सी बातें और भी जानते हैं, जिनको पश्चिमी लोग अभी नहीं मानते। परंतु इन्हीं बातों का वे समय आने पर आविष्कार करेंगे, और उसका नया नाम रखकर संसार को नई बात कहकर दिखलावेंगे।

पश्चिमी विचारों को हाथ में लेने के पहले कदाचित् यह अच्छा होगा कि श्वास लेने के अवयवों का थोड़े में विचार कर लिया जाय।

श्वास लेने के अवयव फेफड़े, और उनसे जुटी हुई हवा जाने की नलियाँ हैं। फेफड़े दो हैं, और वे वक्षःस्थल

(छाती) की कोठरी में, मध्यरेखा के दोनों ओर, एक-एक रहते हैं। हृदय, रुधिर और हवा की बड़ी नलियाँ बीच में पड़कर दोनों फेफड़ों को एक दूसरे से पृथक् करती हैं। प्रत्येक फेफड़ा अपने मूल को छोड़कर शेष चारों ओर छुटा हुआ और स्वतंत्र है। फेफड़ों के मूल में वे नलियाँ जो इन्हें घोंघे (Wind-pipe) से जोड़ती है, और वे रक्तापवाहक धमनियाँ और रक्तोपवाहक शिराएँ हैं, जो फेफड़ों को हृदय से जोड़ती हैं। फेफड़े स्पंज की बनावट के और खोखले होते हैं, और इनके रेशे लचीले अर्थात् रबर की भाँति बढ़ने और सिकुड़नेवाले होते हैं। ये एक बहुत ही बारीक परंतु मज़बूत थैले में घिरे होते हैं, जिसे प्ल्यूरल सैक (Pleural Sac) कहते हैं। इस थैले की एक दीवाल तो फेफड़े से सटी रहती है, और दूसरी दीवाल छाती की भीतरी दीवाल से। इस थैले से एक प्रकार का द्रव स्राव करता है, जिससे दीवालों के भीतरी तलों को श्वास लेने में एक दूसरे पर आसानी से सरकने में सुविधा होती है।

हवा जाने की नलियाँ नासिका के अंतरंग भाग, फेरिंक्स (Pharynx), लेरिंक्स (Larynx), घोंघा और घोंघे को फेफड़ों से जोड़नेवाली नलियों से बनी हैं। जब हम श्वास लेते हैं, तब वायु को नाक के रास्ते से भीतर खींचते हैं। नाक के भीतरी भीगे हुए पर्दे के संपर्क से वह

हवा कुछ गर्म हो जाती है; क्योंकि भीगे हुए पर्दे में पुष्कल गर्म रक्त रहता है। फिर वहाँ से लेरिंक्स में होती हुई वह घोंघे में जाती है। घोंघा नीचे जाकर कई नलियों में विभक्त हो जाता है, जिन्हें ब्रांकियल ट्यूब्स (Bronchial tubes) कहते हैं। ये नलियाँ और भी पतली-पतली नलियों में विभक्त हो-हो कर फेफड़ों की नन्हीं-नन्हीं कोठरियों में प्रवेश कर जाती हैं। फेफड़ों में ये नन्हीं-नन्हीं कोठरियाँ लाखों होती हैं। एक लेखक ने लिखा है कि यदि फेफड़ों की इन छोटी-छोटी कोठरियों को समतल स्थान पर फैला दें, तो ये चौदह सहस्र वर्गफ़ीट स्थान घेर लेंगी। इन्हीं छोटी-छोटी कोठरियों में श्वास द्वारा हवा आती जाती है।

फेफड़े में हवा डायाफ़्राम (Diaphragm) की क्रिया द्वारा खींची जाती है। यह डायाफ़्राम एक बड़ी सुदृढ़, चिपटी, चादर के रूप की मांसपेशी है, जो पेट और छाती के बीच में फैली हुई, पेट को छाती की कोठरी से पृथक् करती है। इस डायाफ़्राम की क्रिया उसी प्रकार आप-से-आप हुआ करती है, जैसे हृदय के धड़कने की क्रिया, संकल्प के प्रभाव से इसे अर्द्ध-इच्छानुयायी भी बना सकते हैं। जब यह फैलती है, तो यह छाती और फेफड़ों के विस्तार को बढ़ा देती है, और इस प्रकार

फेफड़ों में जो खाली स्थान बनता है, उसे भरने के लिये बाहर से हवा नाक द्वारा प्रवेश करती है। जब वह सिकुड़ती है, तो छाती और फेफड़े संकुचित हो जाते हैं, और हवा फेफड़े से बाहर फेंक दी जाती है।

फेफड़ों में हवा के साथ कौन-सी क्रिया होती है, इसके ऊपर विचार करने के पहले रुधिर के संचार के विषय में थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक जान पड़ता है। आप जानते हैं, रुधिर को पहले हृदय संचालित करता है। वह धमनियों और फिर बारीक धमनियों में होता हुआ शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है, और प्रत्येक भाग में जीवट, पोषण और शक्ति पहुँचा देता है। फिर यह दूसरे मार्ग से बारीक शिराओं में होता हुआ मोटी शिराओं में लौटता है, और वहाँ से फिर हृदय में वापस आता है। फिर हृदय से निकलकर वह फेफड़ों में खिंच जाता है।

जब पहले हृदय से संचालित होकर रुधिर धमनियों और सूक्ष्म धमनियों द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग के लिये प्रस्थानित हुआ था, तब वह चमकदार, लाल रंग का और जीवनदायक गुणों और सामान से संयुक्त था। परंतु जब शिराओं के मार्ग से वापस आया, तब गुणहीन, नीला और फीका रंग का होकर आया; क्योंकि शरीर के अंग-प्रत्यंगों से निकाला हुआ रद्दी कूड़ा-करकट बटोरता हुआ आया है। हृदय से प्रस्थान करते समय रुधिर हिमालय-पहाड़ से निकली

हुई नदियों के जल की भाँति निर्मल और स्वच्छ रहता है, पर वापस आते समय शहर की गंदी नलियों के जल के समान मैला और गंदा हो जाता है। यह गंदा रुधिर वापस आकर हृदय की दाहनी आरिकिल (Auricle)-कोठरी में पहुँचता है; और जब यह कोठरी भर जाती है, तो यह सिकुड़ती है, और तब यही गंदा रुधिर निकलकर दाहनी ओर दूसरी वेंट्रिकल (Ventricle)-नामक कोठरी में जाता है। यह कोठरी फिर उसे फेफड़ों में भेजती है। यहाँ वह लाखों, बाल से भी बारीक, नलियों द्वारा फेफड़ों की लाखों हवावाली उन कोठरियों में पहुँचा दिया जाता है, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है। अब यहाँ फेफड़ों की कारखाई देखना चाहिए।

गंदा रुधिर फेफड़ों की लाखों हवावाली कोठरियों में बँट जाता है। अब जब श्वास ली जाती है, तो हवा भी इन्हीं कोठरियों में पहुँचती है, और हवा के ऑक्सिजन का सम्पर्क इस गंदे रुधिर से होता है। ऊपर कह आए हैं कि फेफड़ों में रुधिर बाल से भी पतली नलियों द्वारा पहुँचता है। इन नलियों की दीवालें ऐसी होती हैं कि रुधिर इनसे बाहर नहीं निकल सकता; पर हवा इन दीवालों में प्रवेश पा जाती है। जब ऑक्सिजन का सम्पर्क गंदे रुधिर से होता है, तब एक तरह की जलन पैदा होती है, और रुधिर हवा के ऑक्सिजन को खुद खींच लेता है, और अपनी

कारबोनिक एसिड गैस को, जो उस गंदगी से उत्पन्न हुआ है और जिसे रुधिर शरीर के अंग-प्रत्यंगों से एकत्रित कर लाया है, हवा के सिपुर्द कर देता है। इस प्रकार रुधिर फिर साफ़ और ऑक्सिजन-मिश्रित होकर चमकीला, लाल एवं जीवनदायक शक्ति और सामान से युक्त होकर हृदय की बाईं कोठरी में जाता है। बाईं कोठरी से वह फिर बाईं वेंट्रिकिल (Ventricle)-नामक कोठरी में जाता है, वहाँ से फिर नलियों और बारीक नलियों द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंग को जीवनदान देने जाता है। यह तखमीना किया गया है कि २४ घंटे में ३५,००० पाइंट रुधिर फेफड़े की बाल-सी बारीक नलियों में होकर गुज़रता है। रुधिर की अणुदेहें (Corpuscles) एक ही लाइन में होकर गुज़रती हैं, जिससे उनके दोनों बग़ल में ऑक्सिजन का सम्मेलन होता है। जब कोई ऊपर लिखे हुए विवरण की बारीकियों को ध्यान से विचारता है, तो वह प्रकृति की अनंत रक्षा और चातुरी देखकर आश्चर्य और प्रशंसा में मग्न हो जाता है।

अब देखना चाहिए कि यदि साफ़ हवा, पूरे परिमाण में, फेफड़ों में न पहुँचेगी, तो शरीर के अंगों से लौटा हुआ गंदा रुधिर साफ़ न हो सकेगा, और परिणाम यह होगा कि शरीर केवल जीवन-दायक सामग्रियों से वंचित ही नहीं रहेगा; किंतु रुधिर की गंदगी, जिसे फेफड़ों में साफ़ हो

आना चाहिए था, फिर शरीर के अंगों और प्रत्यंगों में वापस जायगी, और विष उत्पन्न करके मृत्यु को न्योता देगी। गंदी हवा भी ऐसा ही असर डालती है, लेकिन ज़रा धीरे-धीरे। यह भी देखने में आवेगा कि यदि कोई पूरे परिमाण में श्वास न लेगा, तो रुधिर का काम भी उचित रीति से न चल सकेगा; और तब शरीर का उचित पोषण उचित रीति से न होगा, और बीमारी उत्पन्न हो जायगी, अथवा स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। जो मनुष्य अनुचित रीति से साँस लेता है, उसका रक्त नीला, कालापन लिए और निस्तेज होगा। ऊपर से देखने में भी उस मनुष्य का रंग बदरंग दिखाई देगा। ठीक-ठीक साँस लेने से रुधिर-संचार अच्छा होता है, जिससे मनुष्य का रंग स्वच्छ और चमकीला होता है। थोड़ा ध्यान देने से ठीक-ठीक श्वास लेने की महिमा प्रकट हो जायगी। यदि फेफड़ों की साफ़ करनेवाली काररवाई से रुधिर साफ़ न किया जायगा, तो वह दुर्दशा में नाड़ियों में पहुँचेगा। न तो उसकी गंदगी निकाली गई, न वह पूरा साफ़ किया गया। यदि यही गंदगी फिर शरीर में जायगी, तो यह निश्चय किसी-न-किसी बीमारी के रूप में प्रकट होगी। या तो रुधिर-संबंधी कोई रोग होगा, अथवा किसी इन्द्रिय या अवयव के निर्बल हो जाने से उस इंद्रिय या अवयव का काम रुक जायगा, और शरीर में रोग उत्पन्न हो जायगा; क्योंकि शरीर के अवयवों के स्वाभाविक कार्य के ही रुकने से रोग उत्पन्न हुआ करते हैं।

जब फेफड़ों में रुधिर को, पूरे परिमाण में, हवा मिलती है, तब केवल रुधिर की सफ़ाई ही नहीं होती, और कार-बोनिक एसिड गैस ही नहीं खारिज किया जाता; किंतु रुधिर कुछ ऑक्सिजन भी अपने साथ ले लेता है, और उसे शरीर के अंग-प्रत्यंगों में वहाँ पहुँचाता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है, और जिसके द्वारा प्रकृति अपना कार्य उचित रीति से संपादन करती है। जब ऑक्सिजन का संपर्क रुधिर से होता है, तो वह रुधिर के अणुओं में जुट जाता है, और शरीर के प्रत्येक कण, रेशे, मांसपेशी और इंद्रिय में पहुँचता है, [उसे शक्ति देता तथा दृढ़ और बलवान् बनाता है, पुराने और निष्फल अणुओं की जगह नए बलवान् अणु स्थापित करता है। शुद्ध रुधिर में २५ फ़ी-सैकड़ा ऑक्सिजन रहती है।

ऑक्सिजन द्वारा केवल प्रत्येक भाग बलवान् ही नहीं बनाया जाता, किंतु पाचन-शक्ति भी अधिकांश में भोजन के ऑक्सिजन-मिश्रित होने पर ही अवलंबित है; और यह तभी हो सकता है, जब रुधिर में ऑक्सिजन अधिक रहे, और वह खाए हुए अन्न के संपर्क में आकर एक प्रकार की जलन उत्पन्न करे, जिसे जठराग्नि कह सकते हैं। इसलिये आवश्यक है कि फेफड़ों द्वारा ऑक्सिजन की काफ़ी मात्रा ग्रहण की जाय। यही कारण है कि निर्बल फेफड़ेवालों की पाचन-शक्ति भी निर्बल होती है। इस कथन के पूरे महत्त्व को समझने के लिये यह स्मरण रखना चाहिए कि समग्र शरीर

पचे हुए अन्न से पुष्टि ग्रहण करता है; अपक्व अन्न का अर्थ सर्वदा अपुष्ट शरीर होता है। फेफड़े भी उसी द्वार से पुष्टि पाते हैं, और यदि अपूर्ण श्वास लेने से पाचन और पोषण अपूर्ण होगा, तो फेफड़े भी निर्बल हो जायँगे, और अपना काम करने में और भी अधिक असमर्थ हो जायँगे, तथा शरीर अधिकाधिक निर्बल होता जायगा। भोजन-पान के प्रत्येक अणु को ऑक्सिजन में घुस जाना होगा; तभी वे उचित पुष्टि दे सकेंगे, और तभी वे शरीर के भीतर के रद्दी अणुओं को बाहर फेंके जाने की दशा में ला सकेंगे। स्मरण रखना चाहिए कि शरीर के भीतर के परमाणु लगातार रद्दी होते जाते हैं; क्योंकि जहाँ काम होता है, वहीं रद्दियात निकलती हैं। शरीर में सर्वत्र काम हो रहा है। रद्दी इकट्ठा हो जाने से कल-पुर्ज़ों के चलने में बाधा पहुँचती है, और कहीं-कहीं तो मैल बैठ जाने से कल बन्द ही हो जाती है। सारांश यह कि ऑक्सिजन की कमी का अर्थ पुष्टि और सफ़ाई की कमी होना है, जिसका परिणाम स्वास्थ्य-हानि है। अतएव वस्तुतः "श्वास ही जीवन है"।

शरीर की रद्दी चीज़ों को हटाने और उनके स्थान में बलवान चीज़ों को स्थापित करने में जलन पैदा होती है। इसी से शरीर में उचित गरमी बनी रहती है।

अच्छी तरह साँस लेनेवालों को ज़ुक़ाम नहीं होता; क्योंकि उनके शरीर में स्वच्छ और उष्ण रुधिर बना रहता

है, जिसके द्वारा वे बाहरी मौसिम के तबादिले के साथ भिड़कर विजय प्राप्त करते हैं।

ऊपर लिखी हुई काररवाइयों के अलावा पूरी तरह श्वास लेने से भीतरी अवयवों का व्यायाम भी होता रहता है। इस बात पर पश्चिमी लोगों ने ध्यान नहीं दिया है, परंतु योगी लोग इसके महत्त्व को ख़ूब समझते हैं।

अपूर्ण और अधूरी साँस लेने में फेफड़ों की लाखों कोठरियों में से केवल थोड़ी-सी कोठरियों में काम होता है। बहुत-सी कोठरियाँ बंद ही पड़ी रह जाती हैं। धीरे-धीरे उन कोठरियों की काम करनेवाली शक्ति भी जाती रहती है। ज्यों-ज्यों फेफड़ा कम काम करता या उससे कम काम लिया जाता है, त्यों-त्यों शरीर में ऑक्सिजन का संचार कम होता जाता है। पशु अपनी स्वाभाविक दशा में स्वभाविक रीति से साँस लेते हैं। प्रारंभिक दशा में मनुष्य भी ऐसा ही करता था; परंतु जब से सभ्य मनुष्यों ने अस्वाभाविक रहन-चलन स्वीकार किया—सभ्यता के पीछे शैतान बुलाया, तब से हमारा स्वाभाविक श्वास लेना हमसे छिन गया, और मानव-जाति को बड़ी हानि उठानी पड़ी। मनुष्य का शारीरिक कल्याण तभी होगा, जब वह फिर प्रकृति के असली रास्ते पर आवेगा।

चौथा अध्याय

श्वास-क्रिया पर सूक्ष्म विचार

अन्य शिक्षाओं की भाँति श्वास-विज्ञान के विषय में भी सूक्ष्म अर्थात् आभ्यंतरिक विचार उसी प्रकार हैं, जैसे इसके बाह्य विचार हैं। शरीर-विद्या-संबंधी विचारों को इसके स्थूल या बाह्य विचार कह सकते हैं, और जिस पटल का अब हम वर्णन करेंगे, उसको सूक्ष्म अथवा आभ्यंतरिक विचार कह सकते हैं। सभी समयों और सभी देशों के गुप्तवादियों ने गुप्त रीति से अपने कतिपय चुने हुए शिष्यों को सिखलाया है कि वायु में एक प्रकार का पदार्थ या शक्ति है, जिससे तमाम क्रियाएँ, जीवट और जीवन प्राप्त किए जाते हैं। वे लोग इस शक्ति का नाम रखने और इस विषय के विचार में भिन्न-भिन्न मत रखते थे; परंतु मुख्य सिद्धांत कुल गुप्त उपदेशों में पाया जाता है, और वह पूर्वी योगियों के उपदेशों का शताब्दियों से एक अंग रहा है।

इस महती शक्ति के विचार-भेदों से, जिसके कारण इसके भिन्न-भिन्न नाम रक्खे गए हैं, पृथक् रहने के अभिप्राय से, हम इस पुस्तक में इस शक्ति को प्राण के नाम से उल्लेख करेंगे। प्राण एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ 'सार शक्ति'

होता है। बहुत-से रहस्यवादी आचार्य सिखलाते हैं कि वह पदार्थ, जिसे हिंदू लोग प्राण कहते हैं, शक्ति या बल का सर्वव्यापक तत्त्व है; और इसी पदार्थ से समग्र शक्ति और बल निःसृत होते हैं, बल्कि यों कहिए कि इसी पदार्थ से सब शक्तियाँ और बल भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट या उदय होते हैं। इन विचारों से हमें इस पुस्तक के विषय-संबंध में कुछ प्रयोजन नहीं है, और इसलिये हम केवल इतनी ही समझ पर परिमित होते हैं कि यह प्राण शक्ति का मूल है, जो सब जीवित वस्तुओं में प्रकाशित है, और जो निर्जीव वस्तुओं से सजीव वस्तुओं को पृथक् करता है। हम लोग इसे जीवन का द्योतक या संजीवनी-शक्ति कह सकते हैं। यह सब प्रकार के जीवों में—छोटे-से-छोटे ऊष्मज से लेकर बड़े-से-बड़े मनुष्य में तथा छोटे-छोटे काई इत्यादि जीवों से लेकर बड़े-से-बड़े जंतु—में पाया जाता है। प्राण सर्वव्यापक है, यह सब जीवधारियों में पाया जाता है। रहस्य-शास्त्र कहता है कि सभी वस्तुओं में जीव है—सभी परमाणुओं में जीव है। फिर भी कुछ चीज़ों में निर्जीवता इस-लिये प्रतीत होती है कि उनमें न्यून मात्रा में प्राण का विकास हुआ है, अतएव हम उनकी शिक्षा का यह अर्थ समझते हैं कि प्राण सर्वत्र है, प्रत्येक वस्तु में है। प्राण को जीवात्मा से मिलाकर गड़बड़ी न करना चाहिए; क्योंकि जीवात्मा तो परमात्मा का वह अंश है—और प्रत्येक जीव में है जिसके

गिर्द प्राण और अन्य पदार्थ लिपटे रहते हैं। प्राण केवल शक्ति का एक रूपांतर है, जिसको जीवात्मा अपने भौतिक विकास में धारण कर लेती है। जब जीवात्मा शरीर को छोड़ देती है, तब प्राण उसके अधिकार से बाहर होने के कारण, शरीर के पृथक्-पृथक् परमाणुओं अथवा परमाणुसमूहों की आज्ञा का वशवर्ती हो जाता है। और, जब शरीर छिन्न-भिन्न होने लगता और पंचत्व की ओर जाना चाहता है, तब उसका प्रत्येक परमाणु अपने साथ प्राण की पुष्कल मात्रा ले लेता है, जिससे वह परस्पर मिल-मिलाकर नूतन जीव (कृमि, कीट इत्यादि) बनाता है। अप्रयुक्त फ़ाज़िल प्राण उसी महत् प्राण-भंडार में जा मिलता है, जहाँ से वह आया था। जब तक जीवात्मा इसे अपने अधिकार में रखती है, तब तक संयोग बना रहता है, और सब परमाणु जीवात्मा की प्रेरणा से एकत्र संगठित रहते हैं।

प्राण उस पदार्थ का नाम है, जिससे हम एक सर्वव्यापक सार—शक्ति—का द्योतन करते हैं, जो पदार्थ सब गति, बल और शक्ति का सार है, चाहे यह गति, बल, शक्ति आदि आकर्षण-शक्ति, विद्युत-शक्ति, ग्रहों की चाल में प्रकट हो, या सब जीवों के रूप में, बड़े-से-बड़े को लेकर छोटे-से-छोटे तक में, विकसित हो। यह प्राण, शक्ति और बल की, चाहे वे जिस रूप में हों, सत्ता कहा जा सकता है। और, यह वह मूल है, जो एक विशेष रीति से कार्य करके, उस

प्रकार की क्रिया उत्पन्न करता है, जो जीवों के साथ रहती है।

यह महती सत्ता भौतिक द्रव्य के सब रूपों में पाई जाती है, पर वह भौतिक द्रव्य नहीं है। वह प्राण हवा में रहता है, पर वह हवा नहीं है, न हवा के बनानेवाले तत्त्वों में कोई एक है। स्थावर और जंगम जीव हवा के साथ इसे श्वास द्वारा ग्रहण करते हैं; और यदि हवा में यह न मिला रहता, तो वे मर जाते, चाहे वे हवा से भरपूर ही क्यों न रहते। शरीर इसे ऑक्सिजन के साथ ग्रहण करता है, पर यह ऑक्सिजन भी नहीं है। जेनेसिस-नामक ग्रन्थ का हीब्रू रचयिता वायुमंडल की हवा और उसमें व्यापक इस शक्तिवाले पदार्थ के अंतर को जानता था।

वायुमंडल की हवा में प्राण रहता है; परंतु यह अन्यत्र भी रहता है, और उस जगह भी यह व्यापक है, जहाँ हवा नहीं पहुँच सकती। हवा का ऑक्सिजन चर जीवों के पोषण में प्रधान कार्य करता है, और नाइट्रोजन स्थावर जीवों के पोषण में। किंतु प्राण शारीरिक क्रियाओं के अतिरिक्त जीवन के विकास में अपना एक पृथक् ही कार्य करता है।

हम लोग श्वास द्वारा हवा को भीतर खींचा करते हैं। यह हवा प्राण से भरी रहती है, और हम लोग हवा से प्राण लेकर उसे अपने कार्य में लगाते हैं। वायुमंडल की हवा में प्राण

स्वच्छंद रूप से पाया जाता है। यह वायुमंडल की हवा जब ताज़ी रहती है, तब उसमें खूब प्राण रहता है। हम लोग प्राण को अन्य वस्तुओं की अपेक्षा हवा से बड़ी सरलता से ले सकते हैं। साधारण श्वास लेने में हम लोग हवा से यों ही मामूली-सा प्राण लेकर आत्मसात् करते है; परंतु विधानयुक्त और नियमबद्ध साँस लेने से, जिसे योगी की श्वास-क्रिया या प्राणायाम कहते हैं, हम लोग अधिक मात्रा में प्राण खींचने के योग्य हो जाते हैं, जो मस्तिष्क या अन्य तंतु-केंद्रों में एकत्रित किया जाता है, और फिर आवश्यकतानुसार काम में आता है। हम उसी तरह से प्राण एकत्रित कर सकते हैं, जैसे स्टोरेज बैटरी में विद्युत्शक्ति एकत्रित की जाती है। अभ्यासी योगियों में जो अनेक शक्तियाँ आरोपित की जाती हैं, वे बहुधा इसी ज्ञान से प्राप्त हुई रहती और भरे हुए भंडार में से विचार-पूर्वक काम में लाई जाती हैं। योगी लोग जानते हैं कि कैसे साँस लेने से अधिक मात्रा में प्राण प्राप्त हो सकता है, और अपने अभीष्ट कार्य के लिये वे उसी तरीक़े से उसे प्राप्त कर लेते हैं। इस भाँति वे अपने शरीर के सब भागों ही को शक्ति-संपन्न नहीं बना लेते, प्रत्युत इसी के द्वारा वे अपने मस्तिष्क में अधिक प्राण भेजकर गुप्त शक्तियों को प्रकट कर लेते और दैवी तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं। जो मनुष्य जान-बूझकर या अनजान में प्राण एकत्रित करने के विधानों पर चलता है, उसके शरीर

से जीवट और शक्ति का तेज निकला करता है, और जो लोग उसके निकट जाते हैं, वे उसके तेज का अनुभव करते हैं। ऐसा मनुष्य दूसरों को भी शक्ति प्रदान कर सकता और उन्हें जीवट और स्वास्थ्य दे सकता है। जिसको आकर्षण द्वारा रोग दूर करना कहते हैं, वह इसी प्रकार किया जाता है। बहुत-से आकर्षण द्वारा रोग दूर करनेवाले यह जानते भी नहीं कि उन्हें यह शक्ति कैसे प्राप्त हुई!

पश्चिमी विद्वान् हवा में मिश्रित इस अद्भुत शक्ति से बहुत ही कम अभिज्ञ हैं। परंतु इसमें रासायनिक लक्षण न पाकर या अपने थर्मामीटर, बैरामीटर की भाँति किसी यंत्र द्वारा गणना में लाने के योग्य इसे न पाकर, पूर्वी लोगों के इस विचार को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इस पदार्थ को वे समझ नहीं सके, इसलिये उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। ऐसा जान पड़ता है कि ये विज्ञानी लोग अभी तक इतना ही समझ पाए हैं कि अमुक स्थान की हवा में "कोई बात" अधिक है, और डॉक्टर लोग अपने मरीज़ों को उपदेश देते हैं कि खोए हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के लिये वहाँ जाओ।

हवा के ऑक्सिजन को रुधिर खींचता है, और रुधिर-संचार-विभाग उससे काम लेता है। हवा से प्राण को नाड़ी-संप्रदाय (Nervous system) खींचता है, और वही विभाग उससे काम लेता है। जिस प्रकार रुधिर-संचार

द्वारा ऑक्सिजन-मिश्रित रुधिर शरीर के सब अंग-प्रत्यंगों में पहुँचता, शरीर को बनाता तथा उसकी मरम्मत करता है, वैसे ही प्राण भी नाड़ी-संस्थान के प्रत्येक स्थान में पहुँचकर जीवट और शक्ति को बढ़ाता है। यदि हम प्राण को जीवट प्रदान करनेवाला समझें, तो हम खयाल कर सकते हैं कि वह हमारे जीवन में कैसा प्रधान कार्य करता है। जैसे शरीर की कमी ऑक्सिजन को हज़म कर जाती है, वैसे ही नाड़ी-संप्रदाय द्वारा वितरित प्राण सोचने, विचारने, इच्छा करने और पुरुषार्थ करने आदि से खर्च हो जाता है। इसलिये प्राण को लगातार पूर्ति करने की आवश्यकता रहती है।

प्रत्येक विचार, प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक इच्छा की प्रेरणा आदि मानसिक कार्यों एवं शरीर को मांसपेशियों की प्रत्येक गति में कुछ-न-कुछ नाड़ी-बल खर्च होता है। यह तंतुबल वस्तुतः प्राण ही का रूपांतर है। किसी अंग को संचालित करना हो, तो मस्तिष्क नाड़ी द्वारा प्रेरणा करता है, और मांसपेशी सिकुड़ती है, इससे वहाँ पर प्राण का खर्च होता है। जब यह स्मरण रहेगा कि अधिकांश प्राण मनुष्य हवा में से ही श्वास द्वारा ग्रहण करता है, तब ठीक-ठीक साँस लेने की महिमा तुरंत समझ में आ जायगी।

पाँचवाँ अध्याय

नाड़ी-संस्थान (Nervous system)

आपने खयाल किया होगा कि पश्चिमी विज्ञान इस श्वास-क्रिया के संबंध में केवल ऑक्सिजन ग्रहण करने तक जाता है, और वह इतना ही कि ऑक्सिजन कैसे रुधिर-संचार द्वारा शरीर पर क्या असर पहुँचाता है। परंतु योगशास्त्र प्राण के ग्रहण करने पर भी विचार करता है, और यह भी बतलाता है कि नाड़ी-संप्रदाय द्वारा सारे शरीर में फैलकर वह कैसा विकास प्रकट करता है। आगे वर्णन करने के पहले यह बात आवश्यक प्रतीत होती है कि संक्षिप्त रूप से इस नाड़ी-संस्थान पर भी एक दृष्टि डाल दी जाय।

मनुष्य के शरीर का नाड़ी-संप्रदाय दो बड़े विभागों में विभक्त है, अर्थात् एक तो मस्तिष्क से लेकर रीढ़ की हड्डी (मेरुदंड) के साथ-साथ लंबा जाता है, जिसे मस्तिष्क-मेरुदंड-विभाग कहते हैं; और दूसरा छाती, पेट और पेट के नीचे के भाग में फैला है। इस दूसरे को सहानुभावी विभाग कहते हैं। जो विभाग मस्तिष्क से रीढ़ की हड्डी के साथ लंबा फैला है, उसकी बहुत-सी शाखाएँ जगह-जगह से निकल-कर सारे शरीर में जाल की तरह फैली हुई हैं। वैसे ही

सहानुभावी विभाग की शाखाएँ भी निकल-निकलकर सारे शरीर में फैली हुई हैं। पहला विभाग शरीर के बाहर के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है, तथा बाहरी जगत् में कार्य करता हुआ उसके साथ लगाव रखता है। जैसे देखना, सुनना, स्पर्शज्ञान, हाथ हिलाना, पैर हिलाना इत्यादि। दूसरा केवल शरीर के भीतर ही की क्रियाओं से संबंध रखता है। जैसे शरीर का बढ़ाना, अन्न पचाना, रुधिर-संचार इत्यादि।

पहले विभाग द्वारा देखना, सुनना, स्वाद लेना, सूँघना, स्पर्श-ज्ञान इत्यादि बातें होती हैं। यह गति का संचार करता है। इसके द्वारा जीवात्मा सोचती, विचारती और ज्ञान का अनुभव करती है। यह वह औज़ार है, जिसके द्वारा जीवात्मा बाह्य जगत् से संबंध रखती है। यह विभाग टेलीफ़ोन-विभाग की भाँति है, मस्तिष्क जिसका सदर दफ़्तर है, मेरुदंड सदर तार और अन्य तंतुजाल टेलीफ़ोन की शाखाएँ हैं।

मस्तिष्क या भेजा गुद्दे की ढेरी है। इसके तीन भाग हैं। पहला मस्तिष्क ख़ास है, जो खोपड़ी के ऊपरवाले, अगले, मध्य और पिछले भागों में रहता है। दूसरा है छोटा मस्तिष्क, जो खोपड़ी के नीचेवाले पिछले भाग में रहता है। तीसरा है मेडूला ऑबलांगेटा (Medula Oblongata), जो मेरुदंड का आदि भाग है, और छोटे मस्तिष्क के सामने आगे से शुरू हो जाता है।

वास्तविक मस्तिष्क अर्थात् पहला भाग मन के उस खंड का औज़ार है, जो बुद्धि-संबंधी कार्य करता है। छोटा मस्तिष्क इच्छानुवर्तिनी मांसपेशियों में गति का संचार करता है। मेडुला ऑबलांगेटा मेरुदंड का छोर है। इससे और वास्तविक मस्तिष्क से ज्ञान-तंतु निकल-कर, शाखा-प्रशाखा में विभक्त होकर, सिर के प्रत्येक भाग में फैल जाते हैं, इधर प्रत्येक इन्द्रिय में फैलते हैं, एवं छाती, पेट तथा साँस लेनेवाले किसी-किसी अवयव में भी आते हैं।

रीढ़ की हड्डियाँ नीचे से ऊपर तक जो एक नली बनाती हैं, और जिसमें भी गुद्दी भरी रहती है, उसे मेरुदंड कहते हैं। यह गुद्दी की लंबी छड़ी-सी है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर इसमें से शाखाएँ फूटती हैं, और नाड़ी-तंतुजाल द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंग में फैल जाती हैं। मेरुदंड टेलीफ़ोन का सदर तार है, और तंतुजाल उसकी शाखाओं के तार।

सहानुभावी विभाग में नाड़ीगुच्छक (Ganglia) की दो शृंखलाएँ मेरुदंड के दाहने-बाएँ, दोनों ओर हैं, जिन्हें पिंगला और ईडा-नाड़ी कहते हैं। इस शृंखला के अतिरिक्त सिर, गले, छाती और पेट में भी नाड़ीगुच्छक हैं। नाड़ीगुच्छक को, जिसमें नाड़ीकण (Cells) भी सम्मिलित होते हैं, गुद्दी की ढेरी (Ganglia) कहते हैं। ये गुच्छक एक दूसरे से तंतु द्वारा नथे हुए रहते हैं;

और प्रथम विभाग से, जिसे मस्तिष्क-मेरु-विभाग कहते हैं, ज्ञान-तंतुओं और शक्ति-तंतुओं द्वारा नथे रहते हैं। इन्हीं ढेरों से अगणित तंतु निकलकर शरीर के अवयवों और रुधिर की नलियों इत्यादि में जाल की भाँति फैले रहते हैं। कई स्थानों पर ये तंतु एकत्रित होकर मिल जाते हैं, जिन्हें नाड़ी-ग्रंथि या चक्र (Plexuses) कहते हैं। सहानुभावी विभाग उन कार्यों का निरीक्षण करता है, जो शरीर में हमारी इच्छा का आश्रय न करके भी होते रहते हैं। जैसे रुधिर-संचार, श्वास-क्रिया, पाचन इत्यादि।

मस्तिष्क जिस बल का प्रयोग इन तंतुओं द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयव पर करता है, उसे पश्चिमी वैज्ञानिक तांतवबल समझते हैं, यद्यपि योगी उसे एक प्रकार का प्राण का विकास समझता है। खासियत और वेग में वह विद्युत्-धारा के समान होता है। यह देखने में आता है कि इस तांतवबल के विना हृदय नहीं धड़क सकता, रुधिर का संचार नहीं हो सकता, फेफड़े साँस नहीं ले सकते, और कोई अवयव अपना कार्य नहीं कर सकता। सच बात तो यह कि इसके विना शरीर-रूपी यंत्र रुक जाता है। इतना ही नहीं, प्राण के विना मस्तिष्क भी नहीं सोच सकता। जब ये बातें ध्यान में लाई जायँगी, तब प्राणसंचय का महत्त्व लोगों के मन पर जमेगा; और तब श्वास-विज्ञान की महिमा

उस दर्जे से भी आगे बढ़ जायगी, जिस दर्जे तक आज पाश्चात्य वैज्ञानिक इसकी महिमा बताते हैं।

इस तंतुजाल के संबंध में भी योगियों की शिक्षा पश्चिमी विज्ञान से आगे बढ़ जाती है। हमारा अभिप्राय उस चक्र से है, जिसे पश्चिमी विज्ञान सौर्य तांतुकेंद्र (Solar plexus) कहता है, और जिसको वह अनेक तंतुकेंद्रों में से एक केंद्र मानता है, जहाँ बहुत-से सहानुभावी विभाग के तंतु आकर एकत्रित होते हैं। योग-शास्त्र कहता है कि यह सौर्य तांतुकेंद्र तंतु-विभाग का अत्यंत प्रधान अंग (चक्र) है। यह भी एक प्रकार का मस्तिष्क है, और मनुष्य-शरीर का मूल कार्य यही करता है। पश्चिमी विज्ञान भी कुछ इसकी महिमा समझने की ओर झुकता जाता है, परंतु पूर्वी योगियों को तो इसकी प्रभुता शताब्दियों से विदित है। कुछ आधुनिक पश्चिमी विज्ञानियों ने इसे पेट का मस्तिष्क कहा है। यह सौर्य तांतुकेंद्र आमाशय के ऊपर, हृदय की धुकधुकी के ठीक पीछे, रीढ़ की हड्डी अर्थात् मेरुदंड के दोनों ओर रहता है। यह वैसी ही सफ़ेद और भूरी गुद्दी से बना है, जैसी मनुष्य-शरीर की दूसरी गुद्दी होती है। इसका अधिकार भीतरी सभी अवयवों पर है। साधारण रीति से जितना कार्य इसके सिपुर्द समझा जाता है, यह उससे कहीं अधिक कार्य करता है। हम इस सौर्य तांतुकेंद्र-विषयक योग के विचारों का उल्लेख नहीं करेंगे। केवल

इतना ही कह देते हैं कि प्राण का खज़ाना यहीं पर संचय होता है। इस सौर्य तांतुकेंद्र पर चोट लगने से मनुष्य तत्काल मरते हुए देखे गए हैं। पहलवान लोग भी इतना ज्ञान रखते हैं कि अपने प्रतिद्वंद्वी के इसी मुकाम पर चोट पहुँचाकर उसे बलहीन कर देते हैं।

इस मस्तिष्क को जो सौर्य नाम पश्चिमी विज्ञानियों द्वारा दिया गया है, वह बहुत ही सार्थक नाम है; क्योंकि यह शरीर के प्रत्येक अवयव को बल और शक्ति देता है। प्राण के लिये मस्तिष्क भी इसी का आश्रय लेता है। कभी-न-कभी पश्चिमी विज्ञान भी इस सौर्य तांतुकेंद्र के कर्त्तव्यों को पूरे तौर से समझेगा, और इसे उस पदवी से कहीं बढ़कर ऊँची पदवी देगा, जो इस समय इसे उनके ग्रंथों में दी गई है।

छठा अध्याय

नाक और मुँह से श्वास लेना

योगी के श्वास-विज्ञान के सर्वप्रथम पाठों में यह एक प्रधान पाठ है कि नाक से श्वास लेना चाहिए। यदि मुँह से श्वास लेने की आदत पड़ गई हो, तो उसे छोड़ देना चाहिए।

श्वास लेने की कल ऐसी बनी है कि मनुष्य को अधिकार है कि चाहे मुँह से श्वास ले, चाहे नाक से। परंतु दोनों प्रकार से श्वास लेने के लाभों में ज़मीन-आसमान का अंतर है; क्योंकि नाक से श्वास लेने से बल और स्वास्थ्य लाभ होता है, और मुँह से श्वास लेने से बीमारी और निर्बलता भोगनी पड़ती है।

अभ्यासियों को इस बात के सिखलाने की आवश्यकता तो नहीं है कि नाक से श्वास लेना होता है; पर सभ्य समाज में इस छोटी-सी बात की जानकारी से भी आश्चर्यजनक अनभिज्ञता है। हम सब प्रकार के मनुष्यों में बहुतों को ऐसा पाते हैं, जिनको मुँह से ही साँस लेने की आदत पड़ गई है, और जो अपने बच्चों को भी अपना भयंकर और घृणित आदर्श दिखा जाते हैं।

बहुत-सी बीमारियाँ, जिनके शिकार सभ्य मनुष्य हुआ करते हैं, इसी मुँह से श्वास लेने की आदत के कारण पैदा हो जाती हैं। जिन बच्चों को मुँह से श्वास लेने की आज्ञा-सी दे दी जाती है, उनका जीवट और शरीर-संगठन बहुत ही निर्बल हो जाता है। वे युवा-अवस्था में पहुँचते-पहुँचते स्खलित होकर जीर्ण रोगी हो जाते हैं। जंगली मनुष्य की मा अपने बच्चे के साथ बेहतर बर्ताव करती है; क्योंकि वह सादी, स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार कार्य करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह यह खूब जानती है कि श्वास लेने का ठीक द्वार नासिका है, न कि मुँह। और, वह अपने बच्चों के लिये ऐसा ही प्रयत्न करती है,जिससे वे नासिका द्वारा साँस लें, और मुँह बंद रक्खें। जब बच्चा सो जाता है, तो मा उसके सिर को तनिक आगे झुका देती है, जिससे बच्चा ऐसी स्थिति में हो जाता है कि होठों को बंद कर लेता और नथुनों ही से श्वास लेने के लिये विवश होता है। अगर हमारी सभ्य माताएँ भी ऐसा ही करतीं, तो सर्वसाधारण का बड़ा उपकार होता।

मुँह से साँस लेनेवाली इस घृणित आदत के कारण अनेक संक्रामक बीमारियाँ हो जाती हैं। जुकाम और सर्दी की अनेक घटनाएँ इसी से हुआ करती हैं। बहुत-से लोग दिखावे के लिये दिन में मुँह बंद रक्खा करते हैं, परंतु रात में मुँह से ही श्वास लेते हैं, और इस प्रकार बीमारी को

न्योता देते हैं। बहुत सावधानी से की हुई वैज्ञानिक जाँचों से साबित हुआ है कि जो सिपाही या जहाज़ी आदमी अपना मुँह खोलकर सोते हैं, उन पर उन लोगों की अपेक्षा, जो नथुनों से साँस लेते हैं, संक्रामक रोगों के आक्रमण अधिक हुआ करते हैं। एक समय की एक ऐसी ही घटना उल्लिखित है कि एक जंगी जहाज़ पर विदेश में शीतला का प्रकोप बवा के रूप में हुआ। जितनी मृत्यु उस जहाज़ पर उस बीमारी से उस समय हुई, वह सब उन्हीं मनुष्यों की हुई, जो मुँह से श्वास लेनेवाले थे। नाक से श्वास लेनेवालों में एक मनुष्य भी नहीं मरा।

श्वास लेने के अवयवों की रक्षा की सामग्री—जैसे धूल-निवारक छनना इत्यादि—नाक ही में दी हुई है। जब मुँह द्वारा साँस ली जाती है, तो मुँह से लेकर फेफड़े तक ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जो हवा को छान करके साफ़ कर ले, या हवा में जो धूल-कण और छोटे-छोटे अन्य पदार्थ हों, उन्हें पृथक् पृथक् कर दे। मुँह से लेकर फेफड़ों तक धूल-धक्कड़ इत्यादि के लिये फाटक खुला रहता है, इससे श्वास लेने का समग्र अवयव अरक्षित रहता है। मुँह से साँस लेने में जब बहुत सर्द हवा फेफड़ों में पहुँचती है, तो वहाँ अवयवों को भारी क्षति पहुँचा देती है। मुँह के द्वारा ठंढी हवा में साँस लेने से श्वास-अवयवों में प्रायः सूजन आ जाती है। जो मनुष्य रात में मुँह से साँस लेता है, वह जब सवेरे उठता है, तो

उसका मुँह उसे जलता हुआ और गला सूखा हुआ मालूम होता है। वह प्रकृति के नियम को तोड़ रहा है, और बीमारी का बीज बो रहा है।

एक बार फिर याद कर लो कि मुँह में श्वसन-यंत्रों की रक्षा के लिये कोई प्रबंध नहीं है, और सर्द हवा, धूल-धक्कड़ एवं कीटाणु बड़ी आसानी से उस फाटक की राह फेफड़ों में पहुँच जाते हैं। इसके विपरीत नासिका और उसके भीतरी छिद्रों में प्रकृति के पूरे इंतज़ाम का सबूत मिलता है। नाक के नथुने पहले तो बहुत ही संकीर्ण होते हैं, फिर भीतर जा कर टेढ़े-मेढ़े घूमे हुए रहते हैं। शुरू ही में नाक के बाल ऐसी सावधानी से खड़े रहते हैं कि छनने और चलनी का काम देते हैं, हवा से धूल-धक्कड़, तृण आदि कूड़ा पहले ही रोक लेते हैं, और जब साँस भीतर से बाहर आती है, तो उसी के साथ बाहर फेक देते हैं। नासिका केवल चलनी और छनने ही का काम नहीं देती, किंतु श्वास में ली हुई हवा को गर्म कर देने का भी बड़ा भारी काम कर देती है। नासिका की लंबी, संकीर्ण, घूम-घुमाववाली नालियाँ गर्म आर्द्र परदे से घिरी रहती हैं। वह परदा संपर्क होते ही हवा को गर्म कर देता है, जिससे सर्द हवा गले और फेफड़े के नाज़ुक और सुकुमार अवयवों को क्षति न पहुँचा सके।

आपने किसी पशु या अन्य जीव को मुँह खोले सोते हुए कभी न पाया होगा; और न वह मुँह से श्वास ही लेता है।

सच तो यह है कि केवल मनुष्य ही ऐसे हैं—और मनुष्यों में भी सभ्य ही मनुष्य ऐसे हैं—जो प्रकृति के कार्य को उलट-पलट देते हैं; क्योंकि जंगली और असभ्य मनुष्य तो क़रीब-क़रीब सभी ठीक-ठीक साँस लेते हैं। यह संभव है कि सभ्य मनुष्यों को यह अस्वाभाविक श्वास लेने की आदत अस्वाभाविक रहन-चलन और मिथ्या आहार-विहार तथा निर्बलकारी विलास और अतिशय उष्णता के कारण पड़ गई हो।

नासिका में जो साफ़ करनेवाले, छाननेवाले और चालनेवाले औज़ार हैं, वे हवा को गला और फेफड़े-जैसे सुकुमार और कोमल अवयवों के योग्य बना देते हैं। जब तक हवा प्रकृति के साफ़ करनेवाले साधनों द्वारा साफ़ न हो जाय, तब तक वह उन अवयवों के योग्य नहीं होती। जिस मैल और कूड़ा-करकट को नाक की बालरूपी चलनी और आर्द्र परदे ऊपर ही रोककर अपने पास रख लेते हैं, वह कूड़ा बाहर आनेवाली हवा के ज़रिए बाहर चला आता है। यदि वह किसी प्रकार से बचकर भीतर चला भी जाता है, तो प्रकृति हमारी रक्षा करती है, और छींक उत्पन्न कर देती है, जिससे वह बड़े ज़ोर से बाहर फेंक दिया जाता है।

जब हवा फेफड़ों में प्रवेश करती है, तो बाहर की साधारण हवा से उतनी ही भिन्न हो जाती है, जितना डिस्टिल किया हुआ पानी हौज़ के पानी से भिन्न रहता है। नासिका के पेचीदे और स्वच्छ करनेवाले यंत्र, जो हवा की गंदी चीज़ों

को बाहर ही रोक रखते हैं, उतने ही कारगर और आवश्यक हैं, जितना मुँह का कार्य भोजन करते समय गुठलियों, काँटों और हड्डियों को ऊपर ही रोक लेने और आमाशय में न जाने देने में कारगर और आवश्यक होता है। मनुष्य को मुँह से उसी प्रकार श्वास न लेना चाहिए, जैसे उसे नाक द्वारा भोजन न करना चाहिए।

मुँह से श्वास लेने का एक दोष यह भी है कि नाक के पूरों से कम काम लिए जाने के कारण ये पूरे या नथुने साफ़ और निर्बाध नहीं रह सकते, और गंदगी जमा होने से रुद्ध हो जाते अर्थात् जबद जाते या बन्द हो जाते हैं, और नासिका-संबंधी रोगों के योग्य बन जाते हैं। जिस तरह उस सड़क पर, जिस पर आवागमन नहीं होता, घास-पात अटर-सटर भर जाता है, उसी तरह काम न लिए जाने के कारण नाक भी मैली और गंदी चीज़ों से भर जाती है।

जो मनुष्य नाक ही से साँस लेने की आदत डाल लेते हैं, उनकी नाक शीघ्र मैल और गंदगी से नहीं भरती; परंतु जो मनुष्य थोड़ा बहुत मुँह द्वारा अस्वाभाविक रीति से साँस लेते हैं, और अब स्वाभाविक रीति से नाक द्वारा श्वास लिया चाहते हैं, उनको अपनी मैली नाक साफ़ करने के लिये दो-एक बातें बतला देना आवश्यक होगा।

योगियों का तरीक़ा यह है कि वे नाक की राह थोड़ा पानी चढ़ा लेते हैं, और उस पानी को गले से लाकर,

मुँह से निकालकर फेंक देते हैं। कोई-कोई हिंदू योगी किसी बर्तन में पानी रखकर उसमें अपना चेहरा डुबा देता है, और जैसे पिचकारी से पानी खींचा जाता है, वैसे ही वह अपनी नाक से पानी खींचता है। परंतु इस दूसरे उपाय में बहुत बड़े अभ्यास की ज़रूरत है। पहला उपाय भी इतना ही कारगर होता है, और उसके बर्तने में आसानी भी है।

एक और अच्छा तरीक़ा यह है कि खिड़की खोल ले, और वहीं बैठकर ख़ूब साँस ले। पहले एक नथुने को उँगली या अँगूठे से बंद करके दूसरे नथुने से साँस ले; तब दूसरे को बंद करे, और पहली से साँस ले। इस तरह अदल-बदलकर देर तक साँस लेता रहे। इस प्रकार से भी नाक का मैल और रुकावट दूर होती है।

अगर सर्दी या ज़ुकाम की वजह से नाक बंद हुई हो, तो वेसिलीन, कपूर या ऐसी ही किसी वस्तु का प्रयोग करना चाहिए। नकछिकनी या ऐसे ही और किसी पौदे का रस नाक से सूँघने से भी छींक आकर नाक साफ़ होती है। यदि आप थोड़ा-सा भी ध्यान देंगे, तो नाक का साफ़ हो जाना, और फिर साफ़ बना रहना कोई कठिन बात नहीं है।

हमने इस नाक द्वारा श्वास लेने के विषय में कई पृष्ठ लिख डाले; किंतु सिर्फ़ इसीलिये नहीं कि स्वास्थ्य के संबंध में नाक द्वारा श्वास लेना एक आवश्यक बात है, प्रत्युत इस अभिप्राय से भी कि आगे चलकर इस किताब में जो

श्वास लेने की कसरतें बतलाई जाँयगी, वे सब इस नाक ही द्वारा साँस लेने की कसरतें होंगी, और अभ्यासी को नाक द्वारा श्वास लेना अनिवार्य है। योगी की श्वास-क्रिया का आधार नाक ही से साँस लेना है।

हमारे पाठकों को यदि नाक द्वारा साँस लेने की आदत न हो, तो पहले वे इसकी आदत डालें, और इसको साधारण बात समझकर छोड़ न दें।

सातवाँ अध्याय

श्वास लेने के चार तरीक़े

श्वास-क्रिया के विचार में पहले हमें यह देखना आवश्यक है कि श्वास लेने के लिये कौन-सी कारीगरी के प्रबंध प्रकृति द्वारा किए गए हैं, और कैसे श्वास की गति अमल में लाई जाती है। श्वास-क्रिया की कारीगरी पहले (१) फेफड़ों के सिकुड़ने और फैलनेवाली गति और (२) छाती के खोखले, जहाँ फेफड़े रहते हैं, बगलों और अधःतल की क्रियाओं में प्रकट होती है। वक्षःस्थल या छाती मनुष्य-शरीर के खोखले का वह भाग है, जो गले और पेट के बीच में है, और इसी में फेफड़े और हृदय रहते हैं। यह खोखला एक ओर तो रीढ़ की हड्डी से, दूसरी ओर पसलियों और उनकी सहवर्तिनी मुलायम हड्डियों और छाती की हड्डियों से, और नीचे की ओर पेट और छाती की बीचवाली मांस की चद्दर से घिरा हुआ है। इसको अक्सर वक्षःस्थल या छाती कहते हैं। इसकी उपमा एक बिल्कुल बंद कुब्बेदार बॉक्स से दी गई है, जिसका कुब्बा तो ऊपर की ओर रहता है, पीछा रीढ़ की हड्डी से, सामना छाती की हड्डियों से और बगलें पसलियों से बनती हैं।

पसलियाँ संख्या में २४ हैं, जो प्रत्येक पार्श्व में १२ होती हैं। ये रीढ़ की हड्डी के दोनों ओर से निकलती हैं। ऊपर की सात जोड़ी पसलियाँ तो असली पसलियाँ हैं, जो छाती की हड्डी से आकर जुट जाती हैं। नीचे की पाँच जोड़ी पसलियाँ नकली पसलियाँ कही जाती हैं; क्योंकि ये छाती की हड्डी से नहीं जुटी होतीं। इनमें से भी ऊपर की दो तो कुरीं (हड्डी-सी एक चीज़) से, जो हड्डी से ज़रा मुलायम होती है, ऊपरवाली पसली से जुटी होती हैं; पर शेष जुटी भी नहीं रहतीं। उनका सामनेवाला छोर बिल्कुल छुटा और खुला हुआ स्वतंत्र होता है।

श्वसन-क्रिया में पसलियाँ मांसपेशी की दो तहों द्वारा, जिन्हें छाती के भीतर की मांसपेशियाँ कहते हैं, संचालित होती हैं।

श्वास को भीतर खींचते समय मांसपेशियाँ फेफड़ों को फैला देती हैं, जिससे फेफड़ों की कोठरियों में खाली जगह पैदा होने के कारण, उसको भरने के लिये, पदार्थ-विज्ञान के विख्यात नियम के अनुसार, हवा भीतर जाती है। श्वास लेने में जो मांसपेशियाँ पहले गति करती हैं, उन्हीं पर सब कुछ अवलम्बित है। इसलिये सुविधा के लिये इन्हें हम श्वास लेनेवाली मांसपेशियाँ भी कह सकते हैं। बिना इन मांसपेशियों की मदद के फेफड़े नहीं फैल सकते। इन्हीं मांसपेशियों के उचित प्रयोग करने और इन्हें

अपना वशवर्ती बनाने पर यह श्वास-विज्ञान अधिकांश अवलम्बित है। इनको उचित रीति से संचालित करने से फेफड़ा अपनी सीमा तक पूरा फैल जाता है, और अधिक-से-अधिक मात्रा में हवा फेफड़ों में प्रवेश करती है।

योगी लोग श्वास लेने की क्रिया चार प्रकार की बतलाते हैं—

(१) ऊँची साँस

(२) मध्य-साँस

(३) नीची साँस

(४) योगी की पूरी साँस

हम पहले तीन प्रकार की साँसों के विषय में केवल मोटी-मोटी बातें कहकर उनका परिचय करा देंगे। हाँ चौथे तरीक़े का विस्तार-पूर्वक वर्णन करेंगे; क्योंकि इसी पर योगी के श्वास-विज्ञान की नींव है।

(१) ऊँची साँस

साँस लेने के इस तरीक़े को पश्चिमी लोग क्लैवीक्युलर (Clavicular) अर्थात् हँसली की हड्डी तक की साँस कहते हैं। इसमें साँस लेनेवाला पसलियों को ऊँचा कर देता है, और हँसली की हड्डी तथा कंधों को ऊपर उठा देता है। साथ-ही-साथ पेट को भीतर की ओर खींचता और अँतड़ियों को पेट और छाती के बीचवाले परदे से भिड़ा देता है; परदा भी थोड़ा ऊपर उठ जाता है।

इस प्रकार साँस लेने में छाती और फेफड़ों का केवल ऊपरी भाग, जो बहुत ही छोटा होता है, काम में आता है। परिणाम यह होता है कि फेफड़ों में बहुत ही कम हवा प्रवेश पाती है। इसके अलावा छाती और पेट के बीच का परदा तो ऊपर को उठ जाता है, लेकिन उसका फैलाव किसी तरह नहीं हो सकता। छाती की बनावट के विवरण का अध्ययन इस बात को आप ही सिद्ध कर देगा कि इस प्रकार साँस लेने में अधिक-से-अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा, और न्यून-से-न्यून लाभ होगा।

ऊँची साँस सब साँसों से निकृष्ट साँस है, इसमें अधिक से-अधिक शक्ति कम-से-कम लाभ के लिये खर्च करनी पड़ती है। यह ताक़त बर्बाद करनेवाला और कम फ़ायदा पहुँचाने वाला तरीक़ा है। पश्चिमी लोगों में यह तरीक़ा बहुत प्रचलित है। बहुत-सी औरतें इसी प्रकार की साँस लेने की आदी हैं। किंतु गवैए, पादरी, वकील और अन्य लोग भी, जिन्हें कुछ अच्छा ज्ञान होना चहिए था, मूर्खता से इसी प्रकार की साँस लेते हैं।

बोलने और साँस लेने के अवयवों के बहुत-से रोगों का पता लगाया जाय, तो साबित हो जायगा कि इसी वाहियात तरीक़े से साँस लेने के कारण वे रोग पैदा हुए हैं। ऐसी साँस लेने में जो कोमल नाज़ुक अवयवों पर ज़ोर पड़ता है, उसी से कड़ी और कर्कश आवाज़ चारों ओर सुनने में

आती है। ऐसी साँस लेनेवालों में बहुत-से लोग मुँह से साँस लेने के आदी हो जाते हैं।

इस प्रकार की साँस लेने के विषय में जो कुछ कहा गया है, उसमें यदि किसी पाठक को कुछ संदेह हो, तो उसे इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिए। अपने फेफड़ों से कुछ हवा निकाल डालो, दोनों हाथों को बग़लों में लटकाते हुए खड़े हो जाओ, कंधों और हँसली की हड्डी को ऊपर उठाओ, और तब हवा को भीतर खींचो। तुम्हें मालूम होजायगा कि जितनी हवा तुम खींच सके हो, वह साधारण साँस की हवा से बहुत ही कम है। अब कंधों और हँसली की हड्डी को गिरा दो, और पूरी साँस खींचो। तब तुम्हें ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा, जिसे तुम लिखे और छपे हुए शब्दों की अपेक्षा बहुत दिन तक स्मरण रख सकोगे।

(२) मध्य-साँस

इस प्रकार की श्वास-क्रिया को पश्चिमी लोग पसली की साँस कहते हैं। यद्यपि यह ऊँची साँस की अपेक्षा कम आपत्ति-जनक है, तथापि यह नीची साँस और योगी की पूरी साँस की अपेक्षा निकृष्ट है। मध्य-साँस में पेट और छाती के बीच का परदा ऊपर को खिंचता है, पेट भीतर की ओर को दब जाता है, पसलियाँ कुछ-कुछ उठ आती हैं और छाती ज़रा-सा फैल जाती है। यह तरीक़ा उन लोगों

में जारी है, जिन्होंने इस विषय का अध्ययन नहीं किया है। चूँकि इस तरीक़े से भी बेहतर दो तरीक़े और हैं, इसलिये इस पर बहुत थोड़ा-सा विचार केवल इसके दोषों ही को प्रकट कर देने के अभिप्राय से कर दिया गया है।

(३) नीची साँस[1]

इस प्रकार साँस लेना पहले वर्णन किए हुए दोनों तरीक़ों से बहुत अच्छा है। इधर कई वर्षों से बहुत-से पश्चिमी लेखकों ने इसके गुणों की बहुत ही प्रशंसा की है, और "उदर-साँस", "गहरी साँस", "पेट के परदे की साँस" आदि नामों से इसकी बड़ी महिमा गाई है। इस विषय की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित होने से बहुत-से लाभ हुए हैं; क्योंकि बहुतों ने ऊपर लिखे हुए दोनों बुरे और हानिकारक तरीक़ों के स्थान पर इसी प्रकार साँस लेना प्रारंभ कर दिया है। इस नीची साँस के संबंध में बड़ी-बड़ी पद्धतियाँ बन गई हैं, और शिष्यों को इस नए तरीक़े (?) के सीखने में बहुत बड़ी-बड़ी क़ीमत देनी पड़ी है। परंतु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इससे बहुत लाभ हुआ है। शिष्यों को जो इसके लिये बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देनी पड़ी हैं, उसके बदले में, यदि वे ऊँची साँस और मध्य-साँस को त्याग कर नीची साँस लेने लग गए, तो वे अपने रुपयों से अधिक मूल्य की वस्तु पा गए।

बहुत-से पश्चिमी प्रामाणिक व्यक्ति यद्यपि इसे साँस लेने का सर्वोत्तम तरीक़ा कहते हैं, तथापि योगी लोग जानते हैं कि यह उस तरीक़े का एक खंड-मात्र है, जिसे वे सैकड़ों वर्षों से बर्तते आते हैं, और जिसे 'पूरी साँस' कहते हैं। यह बात स्वीकार करने-योग्य है कि नीची साँस के मुख्य भावों से अभिज्ञता हो जाय, तब 'पूर्ण श्वास' का वर्णन मनुष्य की समझ में अधिक आवेगा।

अब फिर एकबार पेट और छाती के बीच के परदे का खयाल कीजिए। वह क्या चीज़ है ? हम पहले देख चुके हैं कि यह छाती और छाती के अवयवों को, पेट और पेट के अवयवों से पृथक् करनेवाला मांस का बना एक परदा है। जब यह स्थिर रहता है, तो पेट की ओर से देखने से छत्र के आकार का दिखलाई देता है। यदि पेट से होकर इस परदे के देखने की कल्पना करें, तो यह वैसा ही प्रतीत होगा, जैसा पृथ्वी पर से देखने में आकाश दिखलाई देता है—मेहराबदार तल के निचले भाग की भाँति। इसलिये इस परदे का ऊपरी पटल, जो छाती के अवयवों की ओर रहता है, बीच में निकले हुए गोल कुब्बे के आकार का होता है, जैसे कोई ऊँचा टीला। जब यह परदा काम करने लगता है, तो यह टीला-नुमा परदा नीचे को दबता है, और तब वह पेट के अवयवों को नीचे दबाता है, जिससे पेट आगे की ओर को कुछ निकल पड़ता है।

नीची साँस लेने में फेफड़ों को, पहले वर्णन किए हुए तरीक़ों की अपेक्षा और अधिक विस्तृत कार्य मिलता है, और इसलिये अधिक हवा साँस के साथ खींची जाती है। इसी बात से पश्चिमी लेखकों में अधिकांश यह कहने और लिखने लगे कि यह नीची साँस, जिसे 'पेट की साँस' भी कहते हैं, विज्ञान के मत से सर्वोत्तम साँस है। परंतु पूर्वी योगी इससे भी उत्कृष्ट तरीक़ा बहुत दिनों से जानते हैं। कतिपय पश्चिमी लेखकों ने भी अब इस बात को जान लिया है। 'योगी की पूर्ण साँस' को छोड़कर अन्य सब तरीक़ों में यह त्रुटि है कि किसी तरीक़े में भी फेफड़े पूरी-पूरी हवा से नहीं भर जाते; अधिक-से-अधिक केवल फेफड़े का एक भाग हवा से भरता है। यही हाल नीची साँस का भी है। ऊँची साँस से फेफड़ों का ऊपरी भाग भरता है, मध्य-साँस से फेफड़ों का मध्यभाग और कुछ ऊपरी भाग भरता है, और नीची साँस से केवल निचला और कुछ मध्य-भाग भरता है। यह बात स्पष्ट है कि जिस तरीक़े से फेफड़ों के सब अंग हवा से भर जायँ, वही उन सब तरीक़ों से अच्छा है, जिनसे केवल कुछ ही भाग भरते हैं। जिस तरीक़े से फेफड़ों की सब जगह पूरी-पूरी हवा से भर जाय, जिससे मनुष्य अधिक-से-अधिक मात्रा में ऑक्सिजन जज्ब कर सकें, और अधिक-से-अधिक मात्रा में प्राण का संचय कर सकें, वही तरीक़ा मनुष्य के लिये अत्यंत मूल्यवान है। योगी लोग जानते हैं

कि पूरी साँस ही का तरीक़ा विज्ञान के जाने हुए तरीक़ों में सबसे अच्छा है।

(४) योगी की पूरी साँस

योगी की पूरी साँस में ऊँची, मध्य और नीची साँस की सब अच्छी-अच्छी बातें आ जाती हैं, और केवल वही बातें छूट जाती है, जो दूषित और आपत्ति-जनक हैं। इस तरीक़े में श्वास लेने के पूरे यंत्रों से पूरा काम लिया जाता है—फेफड़ों का प्रत्येक भाग, हवा की प्रत्येक कोठरी और श्वास लेने की प्रत्येक मांसपेशी पूरे-पूरे काम में लगाई जाती है। इस प्रकार श्वास लेने में श्वास लेने की पूरी कल संचालित हो जाती है, और थोड़ी शक्ति के व्यय से अधिक-से-अधिक लाभ होता है। छाती का खोखला अपनी पूरी सीमा तक चारों ओर बढ़ता है, और कल का प्रत्येक भाग अपनी पूरी क्रिया और पूरा कर्त्तव्य करता है।

इस प्रकार के श्वास लेने में एक बहुत बड़ी खूबी यह है कि श्वास लेने के पुट्ठों को पूरा-पूरा काम मिलता है, और अन्य तरीक़ों में इन पुट्ठों का भाग-मात्र काम करता है। पूरी साँस लेने में और पुट्ठों के साथ-साथ उन पुट्ठों को, जिनके अधिकार में पसलियाँ हैं, कार्य में अधिक लगे रहना पड़ता है, जिससे अवकाश बढ़ता है, फेफड़े फैलते हैं, और आवश्यकता पड़ने पर अवयवों को पूरा सहारा मिलता है।

इस तरह प्रकृति को उसका वांछित प्रयोग मिल जाता है। कतिपय मांसपेशियाँ तो निचली पसलियों को अपने-अपने स्थान पर स्थिर रखती हैं, और कतिपय उनको बाहर की ओर झुकाती हैं।

इस तरीक़े में पेट और छाती के बीच का परदा पूरे अधिकार में और अपना कार्य उचित रीति से संपादित करने के योग्य रहता है, जिससे अधिक सेवा हो सके।

पसलियों की काररवाई में, जिसका ऊपर वर्णन किया गया है, निचली पसलियाँ पेट और छाती के बीचवाले परदे के अधिकार में रहती हैं। उन्हें वह थोड़ा नीचे खींचता है, अन्य पुट्ठे उन्हें अपनी जगह पर थामे रहते हैं, छाती के भीतर के पुट्ठे उन्हें बाहर की ओर दबाते हैं, एवं इस संयुक्त काररवाई से छाती के भीतर का खोखला अपनी हद-भर बढ़ जाता है। इन मांसपेशियों की काररवाई के अलावा छाती के भीतर की पेशियों की प्रेरणा से ऊपरवाली पसलियाँ भी बाहर की ओर दबाई जाती हैं, जिससे छाती का ऊपरी भाग भी अपनी पूर्ण विस्तार-शक्ति-पर्यंत फैल सकता है।

यदि आप चारों साँस लेने के तरीक़ों की ख़ासियतों को समझ गए हैं, तो आप साफ़-साफ़ देख सकते हैं कि पूरी साँस के तरीक़े में शेष तीनों तरीक़ों की अच्छी-अच्छी बातें संयुक्त हैं, और उनके अतिरिक्त छाती के ऊपरी भाग, मध्य-

भाग और निचले भाग की कारवाइयाँ मुनाफ़े में हैं। इस तरह साँस को असली मार्ग प्राप्त हो जाता है।

अगले अध्याय में हम पूरी साँस लेने का अभ्यास बतलावेंगे, और साथ ही इस उत्कृष्ट तरीक़े को प्राप्त करने का पूरा उपाय समझाकर अभ्यास करने के लिये कसरतें भी।

आठवाँ अध्याय

योगी की पूरी साँस कैसे प्राप्त होती है ?

योगी की पूरी साँस ही योगी के समस्त श्वास-विज्ञान का मूल आधार है। शिष्य को पहले इसी का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना और पूरी तरह से इसका अभ्यास कर लेना चाहिए। तभी वह इस पुस्तक में बतलाए हुए और तरीक़ों से लाभ उठाने की आशा कर सकता है। उसको इसे अधूरा ही सीखकर संतुष्ट न हो जाना चाहिए; किंतु इसके अभ्यास में दिलोजान से लग जाना चाहिए, जिससे पूरी साँस का लेना उसके लिये साँस लेने का स्वाभाविक तरीक़ा हो जाय। इसकी आदत के डालने में शिष्य को उद्योग, समय और धैर्य लगाना पड़ेगा। विना इनके दुनिया में कभी कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती। श्वास-विज्ञान के जानने का दूसरा कोई सुलभ राजमार्ग भी नहीं है। अतः शिष्य को इसका अभ्यास और अध्ययन करने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिए, तभी वह लाभ उठा सकेगा। श्वास-विज्ञान को अच्छी तरह सिद्ध कर लेने से बड़े-बड़े लाभ होते हैं। जिस मनुष्य ने एक बार इसे प्राप्त कर लिया, फिर वह इसे छोड़कर श्वास की कुरीतियों

पर चलने के लिये कभी राज़ी न होगा, और अपने मित्रों से यही कहेगा कि अपने परिश्रम करने का पूरा लाभ मैंने पा लिया। हम इन सब बातों को अभी से कह देते हैं कि आप इस साँस की आवश्यकता और महिमा को पूर्ण रीति से समझ लें, और इसे ज्यों-त्यों करके छोड़कर इस किताब में आगे दिए हुए चित्ताकर्षक अभ्यासों में न लग जायँ। हम फिर आपसे कहते हैं कि ठीक रीति से कार्य प्रारंभ करो, तो ठीक नतीजा उठाओगे; और यदि प्रारंभ की नींव ही में असावधानी करोगे, तो शीघ्र या देर में तुम्हारा भवन गिर जायगा।

योगी की पूरी साँस की शिक्षा देने के लिये उचित यह होगा कि पहले सीधी साँस ही के लिये सीधे-सादे उपदेश दिए जायँ, और तब पूरी साँस के संबंध में साधारण बातें बतलाई जायँ। फिर ऐसे अभ्यास कराए जायँ, जिनसे छाती, पेशियों और फेफड़ों की पुष्टि हो। अधूरी साँस लेने के कारण ये छाती, फेफड़े और पेशियाँ अपुष्ट दशा में पड़ी हुई हैं। ठीक इसी स्थान पर हम यह भी कह देना चाहते हैं कि यह पूरी साँस अस्वाभाविक—ज़बर्दस्ती की साँस नहीं है; किंतु इसके विपरीत असली साँस लेने का तरीक़ा प्रकृति के अनुकूल है। स्वस्थ जंगली युवा और सभ्य मनुष्य का स्वस्थ बच्चा, ये दोनों इसी तरीक़े से साँस लेते हैं। परंतु सभ्य मनुष्य ने रहने, चलने और वस्त्र पहनने के

अस्वाभाविक तरीक़े ग्रहण कर लिए, और इसलिये वह अपने असली तरीक़ों से हाथ धो बैठा। हम यहाँ अपने पाठकों को यह स्मरण करा देना चाहते हैं कि पूरी साँस में यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक श्वास में फेफड़े पूरी-पूरी हवा से भर दिए जायँ। पूरी साँस द्वारा आप हवा की औसत मात्रा भीतर खींचें, और उसे फेफड़े के सब भागों में वितरित कर दें, चाहे हवा थोड़ी हो या बहुत। परंतु दिन में कई बार तो अवश्य शृंखलाबद्ध पूरी-पूरी साँस लेनी ही पड़ेगी। जब मौक़ा मिल जाय, तभी इसका अभ्यास कर लेना चाहिए। इससे शरीर अच्छी रीति से और अच्छी दशा में रहता है।

नीचे लिखी हुई कसरत से आप समझ जायँगे कि पूरी साँस क्या चीज़ है—

(१) सीधे अकड़कर खड़े हो, या बैठ जाओ। नाक से धीरे-धीरे लगातार हवा खींचने लगो; पहले फेफड़ों के निचले भाग को हवा से भरते जाओ। यह ऐसे होगा, कि पेट और छाती के बीचवाले परदे से काम लो, और उसके द्वारा नीचे के पेट के अवयवों पर थोड़ा दबाव डालो, जिससे पेट आगे को थोड़ा निकल आवेगा। फिर उसी सिलसिले में, जिसमें तार न टूटे, फेफड़ों के मध्य-भाग को भरो, जिससे निचली पसलियाँ, छाती की हड्डी और छाती बाहर को फैल जाय। फिर उसी साँस में फेफड़ों के ऊपरी

भाग को भरो, जिससे छाती का ऊपरी भाग थोड़ा आगे निकल आवे, और छाती ऊपरी छः या सात जोड़ी पसलियों के साथ ऊपर उठ जाय। अंतिम गति में पेट का निचला भाग कुछ थोड़ा-सा भीतर दब जायगा; पर इस गति से फेफड़ों को सहारा मिल जायगा, और फेफड़ों का ऊँचा-से-ऊँचा भाग भी हवा से भर जायगा।

पहले पढ़ते समय तो यह मालूम होगा कि इस साँस में पृथक्-पृथक् तीन गतियाँ हैं; परंतु यह महज़ ख़याल नहीं है। हवा का भीतर खींचना लगातार ही हुआ करता है, और छाती का समस्त खोखला, नीचे दबाए हुए परदे से लेकर छाती के उच्चतम शिखर तक, जो हँसली की हड्डी के पास है, एक चाल में फैलता चला जाता है। हिचक-हिचक-कर मत साँस लो; कोशिश करो कि लगातार धीरे-धीरे साँस भीतर प्रवेश करती रहे। अंतर्श्वास को तीन चालों में बाँटने की दिक़्क़त अभ्यास द्वारा रफ़ा हो जायगी, और लगातार एक साँस सिद्ध हो जायगी। थोड़ा-सा अभ्यास करने पर तुम दो सेकंड में पूरी साँस भीतर खींच सकोगे।

(२) कुछ सेकंड तक साँस को भीतर ही रोक रक्खो।

(३) छाती को स्थिर स्थिति में रक्खे हुए और पेट को थोड़ा-सा भीतर खींचकर बहुत धीरे-धीरे साँस को बाहर निकालो; और ज्यों-ज्यों हवा बाहर आती जाय, त्यों-त्यों पेट

भीतर की ओर दबता जाय। जब कुल हवा बाहर आ जाय, तब छाती और पेट को ढीला कर दो। थोड़ा अभ्यास करने से इस कसरत का यह भाग आसान हो जायगा, और जब एकबार इसकी गति प्राप्त होजायगी, तब फिर बाद को थोड़ी ही इच्छा करने से यह आसानी से होने लगेगी।

यह बात देखने में आवेगी कि इस प्रकार साँस लेने में श्वास-यंत्र के कुछ भागों को काम में लग जाना पड़ता है, और फेफड़ों के कुल भागों को, यहाँ तक कि दूर-से-दूर-वाली कोठरी को भी, काम करना पड़ता है। छाती का खोखला चारों तरफ़ फैलने लगता है। यह भी आप देखेंगे कि यह पूरी साँस एक ऐसी साँस है, जिसमें ऊँची, मध्य और नीची, तीनों साँसें सम्मिलित हैं, और तीनों एक दूसरे से बड़ी तेज़ी के साथ ऊपर लिखी हुई तरतीब से इस प्रकार जुट जाती हैं कि एक लगातार और पूरी साँस बन जाती है।

अगर आप एक बड़े आइने के सामने बैठकर इस साँस का अभ्यास करेंगे, तो आपको बड़ी मदद मिल जायगी। यदि अपने हाथों को हलका-हलका पेट पर रक्खे रहेंगे, तो आपको साँस के साथ-साथ पेट की गति भी मालूम होती रहेगी। साँस खींचने के अंत में कभी कंधों को थोड़ा ऊपर उठा देना अच्छा होगा। इससे हँसली की हड्डी भी उठ जाती है, और दाहने फेफड़े के ऊपरवाली छोटी ललरी में भी हवा

घुस जाती है। इसी छोटी ललरी में ही कभी-कभी ट्यूबर-क्यूलोसिस (Tuberculosis)-नामक बीमारी फैलती है।

शुरू-शुरू में आपको इस पूरी साँस के प्राप्त करने में थोड़ी बहुत कठिनाइयाँ पड़ेंगी, परंतु थोड़े अभ्यास से आप पक्के हो जायँगे; और जब आप एकबार इस तरीक़े को ग्रहण कर लेंगे, तब कदापि इसे छोड़कर भद्दे तरीक़ों पर जाने को राज़ी न होंगे।

नवाँ अध्याय

पूरी साँस का शारीरिक प्रभाव

पूरी साँस की महिमा जितनी ही कही जाय, थोड़ी है। परंतु जिस शिष्य ने पहले कही हुई बातों का मनन कर लिया है, उसको अब और महिमा बतलाने की आवश्यकता भी नहीं है।

पूरी साँस लेनेवाला—पुरुष हो या स्त्री—क्षय-रोग और फेफड़ों के अन्य रोगों से तो बिलकुल ही निर्भय हो जाता है, सर्दी-ज़ुकाम होने की संभावना भी जाती रहती है। क्षय-रोग शरीर का जीवट कम होने से होता है, और जीवट कम हवा के अंदर जाने से कम होता है। जीवट ही कम होने के कारण नाना प्रकार के रोगों के कीटाणु शरीर पर आक्रमण कर बैठते हैं। अधूरी साँस लेने से फेफड़े का अधिक भाग बेकार रहता है, और ऐसे ही भाग बीमारियों के कीटाणुओं का आवाहन करते हैं। ये कीटाणु रुग्ण अंग में डेरा जमाकर फिर तो तहलका ही मचा देते हैं। यदि फेफड़ों के अवयव अच्छे स्वस्थ रहेंगे, तो वे कीटाणुओं को दबा बैठेंगे। फेफड़ों के अंगों को अच्छा और स्वस्थ रखने का यही एक उपाय है कि उनसे काम ले-लेकर उन्हें खूब दृढ़ बनाए रहे।

सब क्षय-रोगवालों की छाती संकीर्ण हुआ करती है। इसका क्या अर्थ है? सीधा-सादा इसका यही अर्थ है कि इन रोगियों ने कुरीति से साँस ली, जिससे इनकी छाती उन्नत और विस्तृत न हो सकी। जो मनुष्य पूरी साँस का अभ्यास रखता है, उनकी छाती पूरी, चौड़ी होगी। यदि संकीर्ण छातीवाला मनुष्य भी पूरी साँस का अभ्यास करेगा, तो उसकी छाती भी उन्नत और विस्तृत होकर उचित विस्तार की हो जायगी। ऐसे मनुष्यों को तो, यदि उन्हें जीवन से प्रेम है, अवश्य छाती की उन्नति करनी चाहिए। जब कभी देखो कि सर्दी लग जाने का संयोग हो गया है, तो ख़ूब ज़ोर से पूरी साँस की कसरत कर डालो; फिर आप सर्दी-ज़ुकाम से बच जायँगे। जब सर्दी लग जाय, तब ज़ोर से इस कसरत को करे, तो तमाम शरीर में उष्णता आ जायगी। अगर ज़ुकाम हो भी गया हो, तो एक दिन निराहार रहो, और ख़ूब इस कसरत को करो। ज़ुकाम अच्छा हो जायगा।

रुधिर की भलाई-बुराई फेफड़ों द्वारा काफ़ी ऑक्सिजन की पूर्ति पर अवलंबित है। यदि ख़ून में कम ऑक्सिजन पहुँचती रहेगी, तो वह शक्तिहीन हो जायगा, गंदगी से भर जायगा, शरीर में पुष्टि न पहुँचने से शरीर निर्बल हो जायगा, बहुधा विषैला हो जायगा; क्योंकि उसकी गंदगी दूर तो होगी नहीं, उलटे विकार उत्पन्न कर देगी।

चूँकि कुल शरीर और उसके प्रत्येक अंग और अवयव पुष्टि के लिये रुधिर ही पर निर्भर रहते हैं, इसलिये गंदा रुधिर कुल शरीर में विकार उत्पन्न कर देगा। इसकी सरल और सादी दवा यही है कि पूरी साँस का अभ्यास करो।

अधूरी साँस से आमाशय और दूसरे पोषणकारी अवयव बहुत ही दूषित हो जाते हैं। ऑक्सिजन की कमी के कारण वे केवल निर्बल ही नहीं रहते; किंतु चूँकि रक्त में से अन्न का ऑक्सिजन लेना परम आवश्यक है, और तभी खाया हुआ अन्न पचने और रस बनने के योग्य होता है, इसलिये यह बात तुरंत समझ में आ जायगी कि अधूरी साँस लेने से कैसे पाचन-क्रिया और रस-निर्माण में बाधा पड़ती है। यदि रस-निर्माण ही ठीक न हो, तो शरीर की पुष्टि दिन-पर-दिन कम होती जाती और मंद होने लगती है, शारीरिक बल क्षीण होने लगता है, शक्ति घट जाती और मनुष्य का स्वास्थ्य छीजने और गिरने लगता है। क्यों? उचित साँस न लेने के कारण।

अनुचित साँस लेने से ज्ञान और शक्ति का तंतुजाल भी क्षीण हो जाता है; क्योंकि मस्तिष्क, मेरुदंड, तंतु-केंद्रावली और सारा तंतुजाल जब रुधिर से अधूरी पुष्टि पाते हैं, तब अपनी धाराओं को उत्पन्न करने, संचित करने और प्रवाहित करने में अक्षम हो जाते हैं। यदि काफ़ी ऑक्सिजन फेफड़ों द्वारा न ग्रहण की जायगी, तो वे अवश्य ही निर्बल रह

जायँगे। एक बात और भी है, जिससे स्वयं तंतुओं की शक्ति-धाराएँ, बल्कि यों कहिए कि वह शक्ति, जहाँ से ये धाराएँ उत्पन्न होती है, अधूरी साँस लेने से बहुत ही क्षीण हो जाती हैं। परंतु यह दूसरा (प्राण का) विषय है, और इसका वर्णन अन्य अध्यायों में किया जायगा। यहाँ हमारा अभिप्राय केवल इस बात के दिखलाने का है कि अनुचित साँस लेने से सारे तंतु-विभाग का यंत्र ही शक्ति-धारा को वहन करने के अयोग्य हो जाता है।

जननेन्द्रियों का समस्त शरीर-मंडल पर प्रभाव रखना इतना प्रत्यक्ष है कि उसके विशेष वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं है। परंतु यहाँ भी हम इतना कह सकते हैं कि जननेन्द्रियों का निर्बल पड़ जाना अपनी प्रतिक्रिया द्वारा सारे शरीर पर बुरा असर डालता है। पूरी साँस एक ऐसा प्रवाह या भावसाम्य उत्पन्न कर देती है, जिससे शरीर-यंत्र का यह खंड भी अच्छी स्थिति में आ जाता है, और यही प्रकृति का खास उपाय इसकी दुरुस्ती का है। पहले से ही यह बात देखी जा सकती है कि जब जननेन्द्रियाँ बलवती और शक्ति-वाली होती हैं, तो उन्हीं की प्रतिक्रिया से सारा शरीर भी तेजवान हो जाता है। इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं कि इस श्वास-क्रिया से नीच कामवृत्ति जागृत होती है। यह बात कदापि नहीं। योगी लोग ब्रह्मचर्य और पवित्रता के पक्ष-पाती होते हैं, और पाशविक कामवृत्ति को अपने वश

में रखना जानते हैं। परंतु कामवृत्ति को अधिकार में रखने का अर्थ नपुंसकता नहीं है। योगशिक्षा यह बतलाती है कि जिस पुरुष या स्त्री की जननेन्द्रिय में कामशक्ति पूर्ण और स्वस्थ है, वह अपने को और भी प्रबल नियंत्रण से अपने अधिकार में रख सकती है। योगियों का यह विश्वास है, कि अधिकांश कामातुरता पूरे स्वास्थ्य की कमी के कारण होती है, और यह व्यभिचार जननेन्द्रियों की रुग्णता का परिणाम है, न कि स्वास्थ्य का। इस प्रश्न पर तनिक सावधानी से विचार करेंगे, तो मालूम हो जायगा कि योगी का कथन सच है। यहाँ इस विषय का सविस्तर विवरण देने के लिये स्थान नहीं। परंतु योगी लोग जानते हैं कि कामशक्ति को सुरक्षित करके, उसे मनुष्य के चित्त और शरीर के पुष्ट करने में लगा सकते हैं, और इस शक्ति को व्यभिचार-पथ में लगाए जाने से, जैसा कि मूर्ख लोग लगाया करते हैं, रोक सकते हैं। लोगों ने जैसी इच्छा प्रकट की है, उसके अनुसार, इस पुस्तक में, हम योगियों का एक प्रिय अभ्यास देंगे। परंतु कोई शिष्य चाहे योगी की ब्रह्मचर्य और पवित्रता की शिक्षा को माने या न माने, उसे यह बात तो विदित ही हो जायगी कि इस पूरी साँस के द्वारा शरीर के इन अंगों का समुचित स्वास्थ्य अन्य उपायों की अपेक्षा अधिक बढ़ता है। स्मरण रहे, हम समुचित स्वास्थ्य का बढ़ना कहते हैं, न कि उसकी अनुचित वृद्धि। व्यभिचारी लोगों को तो समुचित

का अर्थ इच्छा का घटना मालूम होगा, न कि बढ़ना। परंतु निर्बल इंद्रियवाले पुरुष या स्त्री को ऐसा ज्ञात होगा कि उसकी उस निर्बलता से, जो आज तक उसे मनहूस बनाए हुई थी, उसका छुटकारा हो रहा है, और उसके शरीर पर तेज चढ़ रहा है। हमारे भाव को लोग बुरा न समझें या बुरी जगह पर इसका उल्लेख न करें, यही हमारी कामना है। योगी का यह उद्देश्य है कि संपूर्ण शरीर बलवान् रहे, उसके सब अंग बलिष्ठ रहें, यह बलवान् शरीर अपनी प्रबल इच्छा के पूरे अधिकार में रहे, और उच्च भावनाओं की संजीवनी-शक्ति संचालित होती रहे।

पूरी साँस के अभ्यास में, श्वास को भीतर खींचते समय, पेट और छाती के बीच का परदा ज़रा-सा नीचे दबाया जाता है, जिससे वह कलेजा, आमाशय और कुछ अन्य अवयवों पर हलका दबाव डालता है, फेफड़ों की गति के साथ-साथ इन अवयवों में हलका मर्दन उत्पन्न करता है, ये अपने कार्य में उत्तेजित रहते हैं, और इनका कार्य उत्साहित हुआ करता है। प्रत्येक श्वास के भीतर खींचने में यह कसरत हुआ करती है, जो पोषण करनेवाले और मलत्याग करनेवाले अवयवों में अनुकूल रुधिर-संचार करती है। किंतु ऊँची या मध्य साँस की क्रियाओं में इस भीतरी मर्दन का अवसर ही नहीं मिलता।

आजकल पश्चिमी दुनिया शारीरिक शिक्षा (व्यायाम) की ओर बहुत ध्यान दे रही है। यह बड़ी अच्छी बात है। पर अपने उत्साह में लोग यह न भूल जायँ कि बाहरी शरीर की कसरत ही सब कुछ नहीं है। भीतरी अवयवों को भी व्यायाम की आवश्यकता है। यह स्वाभाविक व्यायाम समुचित रीति से श्वास लेने से ही होता है। छाती और पेट के बीच का परदा ही इस भीतरी व्यायाम का साधन है। इसकी गति पोषण करनेवाले और मलत्याग करनेवाले अवयवों को संचालित कर देती है, उनका मर्दन और मथन प्रत्येक श्वास के जाने और आने में करती रहती है, और उनमें दबाव पहुँचाकर लहू भरती है, और फिर उसे निचोड़ डालती और अवयवों को चौकन्ना रखती है। चाहे कोई भी अवयव अथवा अंग हो, जिसकी कसरत न होगी, वह निकम्मा हो जायगा, और उचित रीति से काम न कर सकेगा। इसलिये यदि कथित परदे द्वारा भीतरी अवयवों का व्यायाम न कराया जायगा, तो ये अवयव रुग्ण हो जायँगे। पूरी साँस लेने से परदे को उचित गति प्राप्त होती है, और मध्य तथा ऊपरी छाती को भी कसरत मिल जाती है। यह साँस अपने कार्यों द्वारा "पूरी" है।

केवल पश्चिमी विज्ञान के विचार से—यदि पूर्वी शास्त्रों पर न भी ध्यान दिया जाय, तो भी—योगियों का यह पूरी साँस का तरीक़ा प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बालक के लिये,

जिसने स्वास्थ्य प्राप्त किया और जो उसे सुरक्षित रखना चाहता है, बहुत ही आवश्यक है। सहस्रों मनुष्य तो इसकी सरलता ही के कारण इस पर ध्यान नहीं देते। वे भांडार-का-भांडार धन पेचीदे और खर्चीले उपायों द्वारा स्वास्थ्य की तलाश में खर्च कर डालते हैं। लेकिन तंदुरुस्ती तो पास ही खड़ी है; उसकी परवा ही नहीं करते। सच है, जो पत्थर यों ही फेंका जा रहा है, वही तंदुरुस्ती के मंदिर के कोने का मुख्य पत्थर है।

दसवाँ अध्याय

योग-विद्या का कुछ अंश

हम नीचे तीन प्रकार की साँस बतलाते हैं, जिनका योगियों में बहुत ही प्रचार है। पहली तो योगी की विख्यात सफ़ाईवाली साँस है, जिसकी बदौलत योगियों के फेफड़े में प्रबल दृढ़ता पाई जाती है। श्वास के प्रत्येक व्यायाम के अंत में वे इस साँस को काम में लाया करते हैं। इस पुस्तक में भी हमने उन्हीं की पद्धति को क़ायम रक्खा है। हम योगी के ज्ञान और शक्तितंतुओं का बल बढ़ानेवाले व्यायाम का भी उल्लेख करते हैं। यह व्यायाम बहुत काल से योगियों में प्रचलित चला आता है। पश्चिमी शारीरिक व्यायामवाले भी इसमें अपनी ओर से कुछ नहीं बढ़ा सके। बहुतों ने तो योग के गुरुओं से इसी को सीखा है। फिर हम योगी के वचनेंद्रियों को पुष्ट करनेवाले व्यायाम को देते हैं, जिसके कारण ही उच्च योगियों के वचन ऐसे मधुर और प्रिय स्वर में हुआ करते हैं। हम तो समझते हैं कि यदि इस पुस्तक में इन तीन कसरतों के सिवा और कुछ भी न होता, तो भी यह पुस्तक पश्चिमी शिष्यों के लिये अनमोल होती। इन तीनों कसरतों को हमारी भेंट-स्वरूप (अथवा

प्रसाद-स्वरूप) ग्रहण कीजिए, और इनका अभ्यास कीजिए।

योगी के फेफड़ों को साफ़ करनेवाली साँस

योगियों में एक प्रकार की श्वास-क्रिया प्रचलित है, जिसे वे उस समय करते हैं, जब उन्हें फेफड़ों में पवन-प्रवाह या सफ़ाई करने की आवश्यकता होती है। और कसरतों में प्रत्येक कसरत के अंत में भी वे लोग इसे किया करते हैं। हमने उन्हीं लोगों का अनुकरण इस पुस्तक में किया है। साँस की इस क्रिया से फेफड़ों में पवन-प्रवाह किया जाता है, जिससे फेफड़ों की सफ़ाई हो जाती है, फेफड़ों की कोठरियाँ उत्तेजित हो जाती हैं, और श्वास लेनेवाले अवयवों पर चौकन्नेपन की रंगत चढ़ जाती एवं उनके साधारण स्वास्थ्य की उन्नति हो जाती है। इसके अतिरिक्त यह सारे शरीर को ताज़ा बना देती है। वक्ता लोग और गवैए इस श्वास-क्रिया को बहुत सुखदायी पावेंगे, विशेषकर उस दशा में, जब बोलते-बोलते या गाते-गाते उनके श्वास लेनेवाले अवयव थक गए हों।

(१) पूरी साँस लो।

(२) हवा को कुछ सेकंड तक रोक रक्खो।

(३) होठों को समेट लो, जैसे सीटी बजाने में समेटते हैं; परंतु गाल न फूलने पावें। तब होठों के बीच के छिद्र से थोड़ी हवा बड़े ज़ोर से फेंको। फिर थोड़ा रुक जाओ; शेष

हवा भीतर ही रुकी रहे। फिर थोड़ी हवा फेंको। जब तक कुल हवा न निकल जाय, तब तक इसी प्रकार करते जाओ। याद रक्खो कि होठों के बीच के छिद्र से हवा निकालने में बहुत बड़ा ज़ोर लगाना होगा।

जब कोई मनुष्य थक गया हो, और उसकी शक्तियाँ खर्च हो गई हों, उस समय यह व्यायाम कर लेने से फिर वह मनुष्य ताज़ा हो जायगा। इस बात को करके आज़मा लीजिए, तब आपको निश्चय हो जायगा। इस कसरत को करते-करते अभ्यास द्वारा अच्छी तरह ठीक कर लेना चाहिए, जब तक कि यह स्वाभाविक रीति और आसानी से न होने लगे; क्योंकि इस पुस्तक में दी हुई अन्य बहुत-सी कसरतों के अंत में इसको करना होगा। इसलिये इसे बहुत अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

शक्ति और ज्ञान-तंतुओं में शक्ति भरनेवाली योगी की श्वास-क्रिया

यह वह कसरत है, जिसकी महिमा को योगी लोग भली भाँति जानते हैं। यह मनुष्य के ज्ञानतंतुओं और शक्ति-तंतुओं को उत्तेजित करनेवाली सर्वोत्तम कसरत है। उसका अभिप्राय तंतुजाल को उत्तेजित करना और तंतुओं की शक्तियों को बढ़ाना है। इस कसरत से प्रधान-प्रधान तांतव-केंद्रों पर उत्तेजनशील दबाव पड़ता है, जिससे समस्त तंतु-जाल उत्तेजित और शक्तिसंपन्न हो

जाता है, और शरीर के अंग-प्रत्यंगों में तांतव-शक्ति का प्रवाह होने लगता है।

(१) सीधा खड़े हो।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो, और उसे भीतर ही रोक रक्खो।

(३) भुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, जिसमें वे बहुत कड़ी न होने पावें, और ढीली रहें। केवल इतना ही बल लगाओ, जिससे वे तुम्हारे सामने सीधी लंबी रहें।

(४) धीरे-धीरे हाथों को पीछे कंधों की ओर लाओ। क्रमशः मांस के पुट्ठों को संकुचित करते जाओ, और उनमें अधिक ज़ोर डालते जाओ, जिसमें कंधों तक पहुँचते-पहुँचते मुट्ठियाँ इतने ज़ोर से बँध जाएँ कि उनमें कँपकँपी मालूम होने लगे।

(५) तब पुट्ठों पर वैसा ही ज़ोर लगाए हुए मुट्ठियों को फिर सामने की ओर आगे बढ़ाओ, और फिर ज़ोर लगाए हुए ही उन्हें तेज़ी से पीछे कंधों पर ले आओ। कई बार ऐसा करो।

(६) मुँह के द्वारा ज़ोर से साँस को बाहर निकालो।

(७) सफ़ाईवाली क्रिया कर डालो।

इस व्यायाम की उत्तमता अधिकांश मुट्ठियों को पीछे ले आने की तेज़ी, पुट्ठों पर ज़ोर देने की अधिकता और फेफड़ों

को हवा से भरे रहने पर अवलंबित है। इस कसरत को जब आप करेंगे, तब इसकी महिमा समझेंगे। यह अद्वितीय सुखदायिनी और शक्तिवर्द्धिनी है।

योगी की वचनेंद्रिय-श्वासक्रिया

योगी लोग अपनी आवाज़ को दुरुस्त करने के लिये एक प्रकार की श्वास-क्रिया करते हैं। वे लोग अपनी आश्चर्यजनक आवाज़ के लिये विख्यात होते हैं। उनकी आवाज़ दृढ़, मधुर, साफ़ और तुरही के शब्द की भाँति दूर तक पहुँचनेवाली होती है। वे इस भाँति की एक श्वासक्रिया करते हैं, जो उनकी वाणी को मधुर, सुन्दर और लोचदार बनाती है, और उसमें एक अकथनीय विचित्र प्रवाह का गुण भर देती है। साथ-ही-साथ उसमें दृढ़ता की भी वृद्धि कर देती है। नीचे लिखी हुई कसरत ऊपर वर्णन किए हुए गुणों को कुछ समय में प्रदान करेगी; पर सावधानी से इस कसरत को करना होगा। यह समझ रखना चाहिए कि यह कसरत कभी-कभी कर ली जाय; इसे श्वास लेने का नियमित तरीक़ा ही न बना लेना चाहिए।

(१) बहुत धीरे-धीरे पूरी साँस नाक द्वारा भीतर खींचो। पूरी साँस खींचने में जहाँ तक अधिक समय लेते बने, लो।

(२) कुछ सेकंड तक रोक रक्खो।

(३) खूब मुँह फैलाकर एकदम से कुल हवा को बड़े ज़ोर से बाहर निकाल दो।

(४) सफ़ाईवाली श्वास-क्रिया द्वारा फेफड़ों को आराम दो। बोलने और गाने में कैसे शब्द उत्पन्न किया जाता है, इस विषय पर जो योगियों के गंभीर विचार हैं, उनमें पूरा प्रवेश न करके हम यहाँ पर इतना ही कह देते हैं कि अभ्यास से वे जान गए हैं कि वाणी के स्वर, गुण और शक्ति केवल शब्दोत्पादक गले के अवयवों ही पर अवलं-बित नहीं, किंतु चेहरे की मांसपेशियों (मांस के पुट्ठों) का भी उस विषय से बहुत कुछ संबंध है। कतिपय चौड़ी छातीवाले मनुष्य बहुत निर्जीव वाणी बोलते हैं; और दूसरे, जो उनकी अपेक्षा छोटी छातीवले हैं, ऐसी ज़ोरदार और सुंदर आवाज़ पैदा करते हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है, जो परीक्षा करने के योग्य है। एक आइने के सामने खड़े हो जाओ, फिर अपने होठों को समेटकर सीटी बजाओ, और अपने मुँह की शक्ल और चेहरे के आकार-विकार को गौर से याद करते जाओ। तब उसी प्रकार बोलो या गाओ, जैसा तुम स्वाभाविक रीति से करते हो; और दोनों का अंतर देखो। फिर कुछ मिनट तक सीटी बजाओ, और तब बिना अपने होठों और चेहरे की स्थिति को बदले थोड़ा फिर गाओ। तब देखोगे कि कैसी लहरदार, सुरीली, साफ़ और सुंदर आवाज़ पैदा हो गई।

ग्यारहवाँ अध्याय

योगियों की प्रधान श्वास-क्रियाएँ

नीचे लिखी हुई सात कसरतें योगियों को बहुत प्यारी हैं। इनसे फेफड़े, पुट्ठे, जोड़ और हवा की कोठरियाँ उन्नत और पुष्ट होती हैं। ये बहुत ही सीधी-सादी पर आश्चर्य-जनक रीति से लाभ पहुँचानेवाली कसरतें हैं। इनकी सादगी की वजह से तुम इनसे उदासीन मत होना; क्योंकि ये योगियों के सावधान अभ्यास और अनुभवों से अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुई हैं, और ये अनेक पेचीदा और कठिन टेढ़ी-मेढ़ी कसरतों का सार-रूप हैं। इनमें से पेचीदा कसरतों का अनावश्यक भाग निकाल दिया गया है, और केवल आवश्यक भाग रख लिया गया है।

(१) श्वास रोकना

यह बहुत ही प्रधान व्यायाम है। इससे श्वास के अवयव और फेफड़े सुदृढ़ और पुष्ट होते हैं। इसके अधिक अभ्यास करने से छाती भी चौड़ी होती है। योगियों को ज्ञात हो गया है कि समय-समय पर फेफड़ों को हवा से खूब भर लेने पर, हवा को भीतर ही थोड़ा रोक रखने से बहुत ही लाभ होता है। और, केवल श्वास ही लेनेवाले अवयवों को नहीं, प्रत्युत

पोषणकारी अवयवों, तंतुजाल और रुधिर को भी। उनको यह भी ज्ञात हो गया है कि हवा को थोड़ा भीतर रोक लेने से पहली साँस की जो हवा फेफड़ों में शेष रह जाती है, उसकी सफ़ाई हो जाती है, और रुधिर में पूरा ऑक्सिजन का संचार हो जाता है। फेफड़ों में रोकी हुई हवा पूरे अवकाश के साथ फेफड़ों में आई हुई गंदगी को ग्रहण कर लेती है, और जब बाहर निकाली जाती है, तब उसी तरह शरीर की गंदगी को लेकर निकलती और फेफड़ों को साफ़ कर देती है, जैसे जुलाब अँतड़ी को। योगी लोग आमाशय, यकृत और रुधिर के बहुत-से विकारों में इस क्रिया के अभ्यास का उपदेश करते हैं। यह गंदी साँस को भी, जो फेफड़ों में कम हवा पहुँचने के कारण दुर्गंधमय हो जाती है, साफ़ करती है। अभ्यासी इस श्वास-क्रिया का अभ्यास ख़ूब जी लगाकर करें; क्योंकि इससे बहुत बड़े लाभ होते हैं। नीचे लिखे हुए संकेतों से इस क्रिया का पूरा और स्पष्ट ज्ञान आपको हो जायगा—

(१) सीधा खड़े हो।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो।

(३) तब तक हवा को भीतर ही रोक रक्खो, जब तक आराम से रोक सको।

(४) मुँह खोलकर ज़ोर से हवा को बाहर निकाल दो।

(५) सफ़ाई करनेवाली क्रिया कर डालो।

पहले तुम बहुत थोड़े ही अर्से तक साँस को रोक सकोगे; परंतु थोड़ा अभ्यास बढ़ने से बहुत उन्नति देख पड़ेगी। यदि अपनी उन्नति देखना चाहो, तो—इच्छा हो तो—घड़ी रखकर यह क्रिया किया करो।

(२) फेफड़ों की कोठरियों को उत्तेजित करना

यह कसरत इस अभिप्राय से की जाती है कि फेफड़ों की हवावाली कोठरियाँ उत्तेजित कर दी जायँ। परंतु नए अभ्यासियों को इसमें अधिकता न करनी चाहिए, और बड़े ज़ोर से तो इसे किसी तरह करना ही न चाहिए। बाज़-बाज़ लोगों को पहले कुछ ही बार इसे करने में चक्कर आने लगेगा। ऐसी दशा में कसरत छोड़कर उन्हें उसी जगह थोड़ा टहल लेना चाहिए।

(१) हाथों को बग़ल में लटकाकर सीधा खड़े हो जाओ।

(२) बहुत धीरे-धीरे हवा को भीतर खींचो।

(३) साँस को भीतर खींचते समय हाथों की उँगलियों से छाती को धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न स्थलों पर ठोकते जाओ।

(४) जब फेफड़े हवा से भर जायँ, हवा को रोक रक्खो, और छाती को हथेलियों से धीरे-धीरे ठोकने लगो।

(५) सफ़ाई करनेवाली क्रिया कर डालो।

यह कसरत सारे शरीर को उत्तेजित करनेवाली और सुखदायिनी है। यह योगियों की विख्यात श्वास-क्रिया है। अधूरी साँस लेने से फेफड़ों की अगणित कोठरियाँ बेकार

और प्रायः मृतप्राय हो जाती हैं। जिस मनुष्य ने पहले बहुत दिन अधूरी साँस ली है, उसके लिये इन मृतप्राय कोठरियों को एकबारगी काम में लगा देना आसान न होगा। परंतु इस अभ्यास के करते रहने से सब बातें समय पाकर ठीक हो जायँगी। यह अभ्यास करने ही योग्य है।

(३) पसलियाँ फैलाना

हम ऊपर बतला आए हैं कि पसलियाँ मुलायम हड्डियों-जैसी एक चीज़ द्वारा सटी हुई हैं, इसलिये इनके फैलाव की बड़ी सम्भावना है। ठीक-ठीक साँस लेने में ये पसलियाँ बड़ा काम करती हैं। इसलिये उचित है कि इन्हें भी विशेष व्यायाम दे दिया जाय, जिससे इनका लचीलापन ठीक बना रहे। अस्वाभाविक रीति से खड़ा होने या बैठने की आदत से ये पसलियाँ थोड़ी बहुत कड़ी और चीमड़ हो जाती हैं। इस कसरत से उनका यह दोष दूर हो जायगा।

(१) सीधा खड़े हो।

(२) दोनों हाथों को दोनों बग़लों पर आराम के साथ, ऊँचे-से-ऊँचे करवटियों के पास रक्खो। अँगूठे तो पीठ की ओर, हथेलियाँ बग़लों पर और उँगलियाँ सामने की ओर, छाती पर, हों।

(३) पूरी साँस भीतर खींचो।

(४) थोड़े अर्से तक हवा को भीतर ही रोक लो।

(५) बगलों को क्रमशः हाथों से दबाओ, और धीरे-धीरे हवा निकालते जाओ।

(६) साफ़ करनेवाली साँस ले लो।

यह कसरत थोड़ी-ही-थोड़ी करो; अधिक नहीं।

(४) छाती फैलाना

काम करते समय झुके रहने के कारण लोग छाती को संकुचित और संकीर्ण कर डालते हैं। यह कसरत छाती को असली दशा पर पहुँचानेवाली और उसका विस्तार बढ़ानेवाली है।

(१) सीधा खड़े हो।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो।

(३) हवा को भीतर ही रोक रक्खो।

(४) दोनों बाहुओं को सामने लाकर कंधों की उँचाई में में सीधा तान दो।

(५) मुट्ठियों को झटका देकर, भुजाओं को बगलों की ओर, कंधों के सामने लाओ।

(६) फिर नंबर ४ की स्थिति में लाओ; फिर नं० ५ में ले आओ। कई बार ऐसा ही करो।

(७) खुले मुँह से ज़ोर से साँस फेंक दो।

(८) साफ़ करनेवाली साँस ले लो।

इस कसरत को थोड़ा-ही-थोड़ा करो; अधिक नहीं।

(५) टहलने की कसरत

(१) सिर ऊँचा, ठुड्ढी तनिक भीतर दबी और कंधे पीछे की ओर दबे हों—यों नपे क़दमों से टहलो।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो। (मन में) हर एक क़दम पर १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८—एक-एक गिनती गिनते जाओ। आठ संख्या तक पहुँचते-पहुँचते संपूर्ण साँस भीतर आ जाय।

(३) धीरे-धीरे नाक की राह से साँस बाहर निकालो। पहले की भाँति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ गिनते जाओ।

(४) श्वासों के बीच में ठहरे रहो; पर चलना और एक से आठ तक गिनती गिनना जारी रक्खो; प्रत्येक क़दम पर एक गिनती।

(५) इसी तरह तब तक जारी रक्खो, जब तक थक न जाओ। थकने पर थोड़ा आराम कर लो, और अपनी इच्छा-नुसार फिर जारी करो। दिन में कई बार ऐसा करो।

कोई-कोई योगी श्वास को १, २, ३, ४ की गिनती तक भीतर ही रोके रहते हैं, तब ८ तक की गिनती में बाहर निकालते हैं। जो तरीक़ा तुम्हें पसंद आवे, उसी के अनुसार इस क्रिया को करो।

(६) प्रातःकालीन श्वास-क्रिया

(१) जंगी स्थिति में खड़े हो, जिसमें सिर ऊँचा, आँखें सामने, कंधे पीछे दबे हुए, घुटने कड़े और भुजाएँ बगल में लटकती हों।

(२) शरीर को पैरों की उँगलियों पर धीरे-धीरे उठाओ; साथ ही धीरे-धीरे पूरी साँस भीतर खींचते जाओ।

(३) श्वास को भीतर ही कुछ सेकंड तक रोक रक्खो; स्थिति वही बनी रहे।

(४) धीरे-धीरे पहली स्थिति पर आओ; साथ-ही-साथ नाक की राह धीरे-धीरे साँस को भी छोड़ते जाओ।

(५) फेफड़ों को साफ़ करनेवाली क्रिया कर लो।

(६) कई बार ऐसा ही करो। कभी अकेला दाहना पैर इस्तेमाल करो, कभी अकेला बायाँ।

(७) रुधिर-संचार को उत्तेजित करना

(१) सीधा खड़े हो।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो, और उसे रोको।

(३) थोड़ा आगे झुको, किसी बेत या छड़ी को दृढ़ता से पकड़ो, और क्रमशः उस बेत को ज़ोर से दबाने में अपना पूरा बल लगा दो।

(४) पकड़ को छोड़ दो, पहली स्थिति पर आओ, और धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालो।

(५) कई बार ऐसा ही करो।

(६) फेफड़ा साफ़ करनेवाली क्रिया करके ख़त्म कर दो।

इस कसरत को बिना छड़ी या बेत के भी कर सकते हैं। बेत के स्थान पर कल्पित बेत को पकड़ो, और यों ही बल का प्रयोग करो। यह कसरत योगियों में बहुत प्रचलित है।

इससे रगों का रुधिर छोरों की ओर दौड़ता है, और नसों का रुधिर हृदय और फेफड़ों की ओर, ताकि वह उस ऑक्सिजन को लेले, जो हवा के साथ-साथ भीतर साँस द्वारा खींचा गया है। जहाँ रुधिर-संचार की बहुत कमी है, वहाँ फेफड़ों में इतना रुधिर ही नहीं रहता कि श्वास द्वारा अधिक खींची हुई ऑक्सिजन की मात्रा को ग्रहण कर सके। इससे शरीर को इस सुधरी हुई श्वास का पूरा फ़ायदा नहीं पहुँचता। ऐसी दशा में पूरी साँस के साथ इसे भी समय-समय पर करना बहुत लाभदायक होगा।

बारहवाँ अध्याय

योगियों की सात छोटी कसरतें

इस अध्याय में योगियों की सात छोटी श्वास-क्रियाएँ दी गई हैं। इनका कोई नाम नहीं है। ये एक दूसरी से बिल्कुल पृथक् हैं, और प्रत्येक का उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक शिष्य इन कसरतों में किसी-न-किसी को अपनी दशा की ठीक आवश्यकता के अनुकूल पावेगा। यद्यपि ये कसरतें छोटी कसरतों के नाम से कही गई हैं, फिर भी ये बहुत ही फ़ायदे की हैं; नहीं तो इस किताब में दी ही न जातीं। ये संक्षेप में शारीरिक शिक्षा और फेफड़े की उन्नति करने का काम करती हैं। इन्हीं को बढ़ाकर एक छोटी किताब लिखी जा सकती है। इनमें योगी की श्वास-क्रियाएँ भी संयुक्त हैं, इसलिये इनका लाभ और भी बढ़ गया है। इनका नाम 'छोटी कसरतें' रक्खा गया है, इसीलिये इन्हें छोड़ न जाओ। इनमें से कुछ-न-कुछ ऐसी कसरतें अवश्य होंगी, जिनकी तुमको सख़्त ज़रूरत है। इनकी जाँच कर लो, और तुम्हीं अपना फ़ैसला कर लो।

अभ्यास १

(१) सीधा खड़े हो। बाहें बग़लों में नीचे लटकती रहें।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो।

(३) भुजाओं को कड़ा किए हुए ऊपर उठाओ, जब तक हाथ सिर के ऊपर जाकर एक दूसरे को छू न लें।

(४) हाथों को ऊपर ही रक्खे हुए साँस को भीतर कुछ सेकंड तक रोक रक्खो।

(५) हाथों को धीरे-धीरे फिर बग़लों में ले आओ; साथ-ही-साथ धीरे-धीरे साँस भी छोड़ते जाओ।

(६) सफ़ाई की क्रिया कर डालो।

अभ्यास २

(१) सीधा खड़े हो, और बाहों को सीधा अपने सामने लाओ।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो, और उसे रोक रक्खो।

(३) झोंका देकर बाहों को पीछे फेंको, जहाँ तक वे जा सकें। फिर पहली स्थिति में लाओ। ऐसा कई बार करो। तब तक श्वास को भीतर ही रोके रहो।

(४) मुँह की राह ज़ोर से साँस को छोड़ दो।

(५) साफ़ करनेवाली साँस ले लो।

अभ्यास ३

(१) सीधा खड़े हो; बाहें सीधी और तुम्हारे सामने हों।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो।

(३) बाहों को वृत्त में झोंका देकर पहले कुछ बार पीछे से, तब फिर उलटकर कुछ बार आगे से घुमाओ। तब तक

साँस को रोके ही रहो। बाहों को वायुचक्की की भाँति बारी-बारी से भी घुमा सकते हो।

(४) मुँह की राह ज़ोर से साँस को छोड़ दो।

(५) सफ़ाई करनेवाली साँस का अभ्यास कर लो।

अभ्यास ४

(१) नीचे मुँह करके ज़मीन पर लेट जाओ, ताकि हथेलियाँ तुम्हारी बगलों के पास ज़मीन पर रहें।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो, और उसे रोको।

(३) शरीर को खूब कड़ा करो, और अपनी भुजाओं के बल से उसे ऊपर उठाओ, जब तक कुल भार हाथों, पैरों और उँगलियों पर न आ जाय।

(४) फिर अपने को पहली स्थिति पर नीचे ले जाओ। ऐसा कई बार करो।

(५) मुँह की राह ज़ोर से साँस को छोड़ दो।

(६) सफ़ाई करनेवाली कसरत कर डालो।

अभ्यास ५

(१) सीधा खड़े हो; हथेलियाँ एक दीवाल पर पड़ी रहें।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो, और रोको।

(३) छाती को दीवाल पर ले जाओ, जिससे शरीर का कुल भार तुम्हारे हाथों पर रहे।

(४) भुजा के ही पुट्ठों के बल से अपने शरीर को दीवाल से अलग हटाओ। शरीर को कड़ा ही रक्खो।

(५) मुँह की राह ज़ोर से साँस को छोड़ दो।

(६) साफ़ करनेवाली क्रिया कर डालो।

अभ्यास ६

(१) इस तरह सीधा खड़े हो कि हाथ तो दोनों ओर कमर पर हों, और कुहनियाँ बाहर निकली हों।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो, और उसे रोको।

(३) टाँगों और नितम्बों को कड़ा रक्खो, और अच्छी तरह आगे झुको, मानों सलाम कर रहे हो; साथ-ही-साथ धीरे-धीरे साँस को भी छोड़ते जाओ।

(४) पहली स्थिति पर आओ, और दूसरी पूरी साँस भीतर खींचो।

(५) पीछे की ओर झुको; साथ-ही-साथ धीरे-धीरे साँस भी छोड़ते जाओ।

(६) पहली स्थिति पर आओ, और फिर पूरी साँस भीतर खींचो।

(७) बग़ल की ओर लटको, और धीरे-धीरे साँस को छोड़ते जाओ (एक बार दाहनी ओर, फिर वैसे ही दूसरी बार बाईं ओर लटकना होगा)।

(८) सफ़ाई की क्रिया कर डालो।

अभ्यास ७

(१) सीधा खड़े हो या बैठो, ताकि रीढ़ की हड्डी सीधी रहे।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो; परंतु लगातार एक धारा में खींचने के बजाय कई बार थोड़ा-थोड़ा करके जल्द-जल्द साँसखंड खींचो, मानों तुम नौसादर और चूना सूँघ रहे हो, और पूरी साँस नहीं खींचना चाहते। इन साँस-खंडों को बाहर मत निकालो, पर एक में दूसरा मिलाते जाओ, जब तक हवा से पूरा फेफड़ा न भर जाय।

(३) चंद सेकंड साँस को रोक रक्खो।

(४) नाक की राह से आराम के साथ लम्बी साँस छोड़ो।

(५) फेफड़ा साफ़ करने की क्रिया कर डालो।
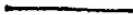
तेरहवाँ अध्याय

कम्प और योगी की तालयुक्त श्वास-क्रिया

सब कुछ काँप रहा है। छोटे-से-छोटे परमाणु से लेकर बड़े-से-बड़े सूर्य तक, सब काँपने की दशा में हैं। प्रकृति में कोई भी वस्तु अत्यंत निश्चल स्थिति में नहीं है। यदि एक परमाणु भी कम्प-रहित हो जाय, तो सारे विश्व को नष्ट कर दे। लगातार कम्प में ही विश्व का कार्य हो रहा है। जड़ परमाणुओं पर शक्ति की लगातार प्रेरणा हो रही है, जिससे अगणित रूप और असंख्य भेद उत्पन्न हुआ करते हैं; तथापि ये रूप और भेद भी स्थायी नहीं हैं। ज्यों ही ये बन जाते हैं, परिवर्तन आरम्भ हो जाता है, और इनके अगणित रूप पैदा होते हैं, जो स्वयं परिवर्तित होकर नए-नए रूप खड़े कर देते हैं। और, यों ही अनंत काल तक शृंखला चली जाती है। इस रूप की दुनिया में कुछ भी स्थायी नहीं है; तथापि महती सत्यता परिवर्तनहीन है। रूप केवल दिखावा-मात्र हैं। वे आते हैं, जाते हैं; परंतु सत्य अटल और परिवर्तन-रहित है।

मनुष्य-शरीर के परमाणु भी अनवरत कम्प में हैं। अनंत परिवर्तन हो रहे हैं। थोड़े ही महीनों में शरीर बनानेवाले

परमाणुओं में पूरा परिवर्तन हो जाता है, और जो परमाणु इस समय तुम्हारे शरीर को संगठित किए हुए हैं, उनमें से एक भी कुछ महीनों के पश्चात् न पाया जायगा। कम्प ! लगातार !! परिवर्तन ! लगातार परिवर्तन !!

कुल कम्प में एक ताल पाई जाती है। ताल विश्व में व्यापक है। सूर्य के चारों ओर ग्रहों का घूमना, समुद्र का उठना और दबना, हृदय का धड़कना, ज्वार और भाटा, ये सब ताल के नियम के अनुयायी हैं। सूर्य की किरणें हमारे पास तक पहुँचती हैं, वृष्टि आती है; ये सब उसी नियम के अनुसार होते हैं। सब वृद्धि इसी नियम की प्रदर्शिनी है। सब गति इसी ताल के नियम का विकास है।

हमारा शरीर भी इस ताल के नियम का वैसा ही अनुवर्ती है, जैसे ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमने में इस नियम के अनुवर्ती हैं। योगी का आभ्यान्तरिक श्वास-विज्ञान बहुत कुछ प्रकृति के इसी प्रत्यक्ष नियम के आधार पर है। शरीर को ताल का अनुसरण करने से योगी बहुत-सा प्राण खींचने में समर्थ होता है, जिसको वह अभीष्ट कार्य के सम्पादित करने में लगाता है। आगे चलकर हम इस विषय में और विस्तार से कहेंगे।

तुम्हारी देह उस खाड़ी के समान है, जो समुद्र से निकलकर ज़मीन में आ गई हो। यद्यपि देखने में तो वह अपने

ही नियम के आश्रित प्रतीत होती है; पर दरअसल वह समुद्र के ज्वार और भाटा के अधीन है। जीवन का महासमुद्र फूल और पचक रहा है, उठ और दब रहा है, और सब उसी की लहर और ताल के आधार पर तदनुकूल हो रहे हैं। प्राकृतिक दशा में तो हम लोग जीवन-रूपी महासमुद्र के कम्प और ताल को पाते रहते हैं, और उसका अनुवर्तन करते हैं; परंतु कभी-कभी उस खाड़ी का मुँह नई आई हुई मिट्टी और रेत आदि से बंद हुआ प्रतीत होता है। और, तब हम समुद्र-रूपी माता से प्रेरणा पाने में असमर्थ हो जाते हैं, और हमारे भीतर गड़बड़ मालूम होने लगती है।

हम लोगों ने सुना है कि कोई राग, बेला-बाजे पर, यदि बार-बार ताल के साथ बजाया जाय, तो ऐसे कम्प को संचालित करता है, जो एक समय में एक पुल को बरबाद कर सकता है। ऐसा परिणाम उस समय भी सत्य होता है, जब सिपाहियों की एक पलटन पुल को पार करने लगती है। उस वक्त हुक्म दिया जाता है कि ऐसे अवसर पर एक साथ क़दम उठाने का नियम भंग कर दिया जाय; नहीं तो शायद यह कम्प पुल और पलटन, दोनों को ले बैठे। ताल-युक्त गति के प्रभाव के ऐसे उदाहरणों से तुम्हें विदित हो जायगा कि तालयुक्त साँस लेने से शरीर पर कैसा प्रभाव पड़ सकता है। सारा शरीर कम्प को ग्रहण करता और

दृढ़ संकल्प से मेल मिला लेता है, जिससे फेफड़ों की ताल-पूर्वक गति होती है; और जब वह ऐसे मेल में हो जाता है, तो दृढ़ संकल्प की आज्ञाओं का अनुसरण करने लगता है। जब शरीर इस प्रकार ताल के अनुवर्तन-योग्य हो जाता है, तब योगी को अपने संकल्प की आज्ञा के अनुसार शरीर के किसी भाग में अधिक रुधिर-संचालन करने में कठिनाई नहीं होती, और इसी भाँति वह तंतु-बल को किसी अंग या अवयव में, अधिक,मात्रा के साथ, भेज सकता है, जिससे उस अंग या अवयव को दृढ़ता और उत्तेजना मिलती है।

इसी प्रकार योगी ताल-युक्त श्वास द्वारा प्रकृति के कम्पमान प्रवाह को पकड़ लेता है, और अति अधिक प्राण को खींचने और अधिकृत करने में समर्थ हो जाता है; और तब वह प्राण उसकी इच्छा के आश्रित रहता है। वह उस प्राण को, अपने विचार दूसरों के पास भेजने में, साधन की भाँति प्रयोग कर सकता और करता है, और वैसे ही दूसरों के विचारों को, जो उसी कम्प में संयुक्त रहते हैं, अपने पास आकर्षित करता है। दूरस्थ पदार्थों का अनुभव करना, अपने विचार दूसरों के पास भेजना और दूसरों के विचारों को अपने-आप जान लेना, मानसिक क्रिया द्वारा रोग छुड़ाना, मिसमेरिज़्म इत्यादि विषय, जो आज-कल पश्चिमी संसार में इतनी रोचकता उत्पन्न कर रहे हैं, और

जिन्हें योगी लोग शताब्दियों से जानते हैं, और भी पुष्ट और स्पष्ट हो सकते हैं, यदि प्रयोग करनेवाला ताल-युक्त श्वास लेने के पश्चात् इन प्रयोगों को करे। तालयुक्त श्वास मानसिक प्रयोगों अथवा आकर्षण द्वारा रोग चंगा करने में कई गुना अधिक लाभ पहुँचावेगी।

इसी ताल-युक्त श्वास को प्राणायाम कहते हैं। इसमें विशेष बात जान लेने की यह है कि ताल का मानसिक परिज्ञान प्राप्त कर लिया जाय। उन लोगों को, जो संगीत में कुछ जानकारी रखते हैं, तुली हुई गिनती की अभिज्ञता होती है। दूसरों के लिये जंगी सिपाहियों के क़दम—'बायाँ, दाहना' 'बायाँ, दाहना' 'बायाँ, दाहना', एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार—अच्छी तरह यह भावना उत्पन्न कर सकते हैं।

योगी अपने ताल-युक्त श्वास अर्थात् प्राणायाम की मात्रा उतने ही काल की बनाता है, जो हृदय की धड़कन के बराबर होता है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों में हृदय की धड़कन का काल भिन्न-भिन्न हुआ करता है; परंतु अपने हृदय की धड़कन के काल की मात्रा ही अपनी-अपनी ताल-युक्त साँस के लिये ठीक परिमाण है। अपने हृदय की धड़कन का काल अपनी नाड़ियों पर उँगली रखकर निश्चय कर लो, और तब गिनने लगो—१, २, ३, ४, ५, ६; १, २, ३, ४, ५, ६ इत्यादि। और, तब तक गिनते जाओ,

जब तक ताल खूब ठीक-ठीक हृदय पर जम न जाय। थोड़े अभ्यास से ताल बँध जायगी, जिससे तुम आसानी से उस पर गिन सकोगे। नया मनुष्य प्रायः ६ मात्रा में श्वास खींचता है, परंतु अभ्यास से वह बहुत कुछ बढ़ा सकता है।

योगियों के प्राणायाम का यह नियम है कि श्वास खींचने (पूरक प्राणायाम) और श्वास छोड़ने (रेचक प्राणायाम) में बराबर मात्राएँ हों। श्वास भरने (कुम्भक) और श्वास खाली हो जाने पर रोक की मात्रा, भरने और खाली करने की मात्रा की आधी होनी चाहिए।

ताल-युक्त श्वास का नीचे लिखा हुआ अभ्यास पूरी तरह समझकर कर लो; क्योंकि इसी के आधार पर अनेक अभ्यास हैं, जिनका आगे चलकर ज़िक्र किया जायगा।

(१) सीधा अपने आराम के आसन से बैठो; पर अपनी छाती, गला और सिर को यथासाध्य एक सीध में रक्खो। कंधे ज़रा पीछे को दबे हों, और हाथ जाँघों पर आराम से पड़े हों। इस स्थिति में शरीर का अधिकांश बोझ पसलियों पर रहता है, और इस आसन में मनुष्य देर तक बैठ सकता है। योगी को यह बात सिद्ध हो गई है कि ताल-युक्त श्वास का सर्वोत्तम फल नहीं मिल सकता, यदि मनुष्य छाती खलाकर और पेट निकालकर आसन लगावेगा।

(२) श्वास को धीरे-धीरे भीतर खींचते हुए हृदय की गति की ६ मात्रा गिन जाओ।

(३) तीन मात्रा तक गिनकर रोक रक्खो।

(४) ६ मात्रा तक गिनते हुए श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालो।

(५) श्वासों के बीच में ३ मात्रा तक बिना श्वास के रहो।

(६) बार-बार ऐसा ही करते रहो; पर प्रारंभ ही में अपने को थका मत डालो।

(७) जब अभ्यास को समाप्त करना चाहो, तब सफ़ाई करनेवाली श्वास-क्रिया कर डालो। इससे तुम्हें आराम मिल जायगा, और फेफड़े साफ़ हो जायँगे।

थोड़े ही अभ्यास के बाद श्वास खींचने और श्वास छोड़ने का समय १५ मात्रा तक बढ़ाया जा सकता है। किंतु मात्रा बढ़ाते हुए मैं स्मरण रहे कि श्वास को रोकने और बिना श्वास के रहने की मात्राएँ, श्वास खींचने और श्वास छोड़ने की मात्राओं की आधी हुआ करती हैं।

श्वास की मात्राओं के बढ़ाने के प्रयत्न में अति मत करो; परंतु ताल के प्राप्त करने में जहाँ तक हो सके, पूरा प्रयत्न करो; क्योंकि श्वास की लंबाई की अपेक्षा यह अधिक प्रधान बात है। तब तक यत्न में लगे रहो, जब तक तुम्हें ताल-युक्त गति न मिल जाय, और जब तक तुम्हें सारे शरीर में व्याप्त कंप की गति के ताल का अनुभव स्वयं न होने लगे।

इसमें थोड़े अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता होगी। परंतु उन्नति करने में जो आनंद का अनुभव तुम्हें होगा, वह इस कार्य को आसान बना देगा। योगी बहुत ही संतोषी और धैर्यवान् मनुष्य होता है, और इन्हीं गुणों से बड़ी-बड़ी बातें प्राप्त कर लेता है।

चौदहवाँ अध्याय

मन:संयुक्त श्वास का रूप

योगी के ताल-युक्त श्वास के अतिरिक्त अब तक जितने अभ्यास दिए गए हैं, उनमें अधिकांश अभ्यास शारीरिक कसरत से ही संबंध रखनेवाले हैं। ये स्वयं भी बहुत लाभदायक हैं। परंतु योगी लोग इस विचार से और भी इनका आदर करते हैं कि ये कसरतें मानसिक और आध्यात्मिक अभ्यासों का भी वास्तविक आधार-रूप हैं। इस विषय के शारीरिक भाग को तुच्छ दृष्टि से देखकर निरादृत मत करो; क्योंकि याद रक्खो, पुष्ट मन को धारण करने के लिये पुष्ट शरीर भी चाहिए। और यह बात भी है कि शरीर ही जीवात्मा का मंदिर है। यही वह लैम्प है, जिसमें आत्मा का प्रकाश दीप्त हो रहा है। सब बातें अपने स्थान पर अच्छी होती हैं, और सब बातों के लिये स्थान भी है। सम्पुष्ट मनुष्य ही पक्का मनुष्य है। वह शरीर, मन और आत्मा, तीनों के महत्त्व को समझता और तीनों को उनका ऋण चुकाता है। किसी एक को भुला देना अपराध है। इस अप-राध का कभी-न-कभी प्रायश्चित करना पड़ेगा। वह एक ऐसा ऋण है, जिसे ब्याज के साथ चुकाना ही पड़ेगा।

अब हम योगी के श्वास-विज्ञान का मानसिक भाग लेते हैं, इसका वर्णन हम अभ्यासों की शृंखला के रूप में करेंगे। प्रत्येक अभ्यास में उसकी व्याख्या भी होगी।

तुम्हें यह बात देखने में आवेगी कि प्रत्येक अभ्यास में ताल-युक्त श्वास के साथ-साथ यह शिक्षा दी गई है कि अमुक अभीष्ट वस्तु का ध्यान धरो। इस मानसिक स्थिति से उस दृढ़ इच्छा के लिये साफ़ रास्ता मिल जाता है, जिस पर वह अपने बल का अभ्यास करे। मैं इस पुस्तक में दृढ़ इच्छा के बल का वर्णन नहीं कर सकता, और यही मान लेता हूँ कि तुम लोग इस विषय में कुछ जानकारी रखते होगे। अगर तुम्हें इस विषय की जानकारी नहीं है, तो भी तुम्हें इन कसरतों का अभ्यास करने से उनका और भी स्पष्ट ज्ञान होगा, जो केवल बहुत-से वचनों द्वारा भी न होता। एक पुरानी कहावत है कि एक रत्ती गुड़ खानेवाला गुड़ के स्वाद को हाथी के बोझ-भर गुड़ देखने-वाले से अधिक जानता है।

१—योगी की मानसिक साँस के लिये साधारण उपदेश

योगी की कुल मानसिक श्वास-क्रिया का आधार ताल-युक्त श्वास है, जिसके विषय में हम पिछले अध्याय में शिक्षा दे आए हैं। अब नीचे के अभ्यासों में एकबार कही हुई बात को ही बार-बार दुहराने के बजाय हम केवल इतना ही कहेंगे कि ताल-युक्त श्वास लो। और, तब

मानसिक बल अर्थात् प्रेरित इच्छा शक्ति के अभ्यास की, जो ताल-युक्त श्वास के कम्प के संयोग से कार्य करती है, शिक्षा देंगे। थोड़े अभ्यास के पश्चात् तुम्हें विदित हो जायगा कि पहली ताल-युक्त साँस के बाद फिर तुम्हें गिनना न पड़ेगा; क्योंकि तुम्हारा मन ताल और उसके काल की अवधि को ग्रहण कर लेगा, और तुम खुशी से ताल-युक्त श्वास लेते रहोगे। तुम्हें मालूम होगा कि आप-से-आप क्रिया हो रही है। इससे मन को, इच्छा की प्रेरणा से, अपनी कम्पायमान धाराओं को यथेष्ट स्थान पर भेजने के लिये स्वतंत्रता मिल जायगी। नीचे लिखा हुआ पहला अभ्यास इच्छा की योग-विषयक शिक्षा के लिये देखिए—

२—प्राण का वितरण

पृथ्वी या चारपाई पर चित्त पड़कर, सर्वांग को पूरे तौर से ढीला करके, हाथों को सौर्य-केंद्र (जहाँ आमाशय का गड्ढा है, और जहाँ से पसलियाँ पृथक् होने लगती हैं) पर रखकर ताल-युक्त श्वास लो। जब ताल की गति पूर्ण रीति से निर्द्धारित हो जाय, तब यह प्रेरणा करो कि प्रत्येक साँस प्राण के विश्वभांडार से अधिक प्राण अर्थात् जीवनी-शक्ति खींचे, जिसे तंतु-जाल धारण करेगा, और सौर्य-केंद्र संचित करेगा। प्रत्येक निःश्वास (अर्थात् श्वास छोड़ने) में यह कल्पना करो कि प्राण सारे शरीर में—प्रत्येक अवयव और अंग में, प्रत्येक मांसपेशी, रेशे और देहाणु में, प्रत्येक तंतु,

नाड़ी, रग और नस में, सिर की चोटी से लेकर पैर के तलवे—तक वितरित हो रहा है, जिससे प्रत्येक तंतु दृढ़, बलवान् और उत्तेजित हो रहा है, प्रत्येक तंतु-केंद्र प्राण से भरा जा रहा है, और सारे शरीर में शक्ति, बल और दृढ़ता वितरित हो रही है। जब इच्छा की प्रेरणा करो, तब यह कल्पना करने का यत्न करो कि प्राण फेफड़ों द्वारा झोंके से प्रवेश कर रहा है, सौर्य-केंद्र में संचित हो रहा है, और निःश्वास के समय वही सारे शरीर में, हाथ और पैर की उँगलियों तक, वितरित हो रहा है। दृढ़ इच्छा का प्रयोग बड़े प्रयत्न के साथ करना आवश्यक नहीं है; केवल उस बात की आज्ञा करना, जो आपका अभीष्ट हो, और फिर उसके मानसिक रूप की कल्पना कर लेना, बस, इतना ही आवश्यक है। शांति-पूर्वक आज्ञा देना और मानसिक रूप खड़ा कर देना दबाव-पूर्वक इच्छा से बढ़कर है; क्योंकि बहुत प्रयत्न के साथ दबाव देने से बल की व्यर्थ हानि होती है। ऊपर लिखा हुआ अभ्यास बहुत ही सहायता देने वाला होता है, तंतुओं को बहुत ताज़ा और बलवान् बना देता है, और सारे शरीर में सुख का भाव उत्पन्न कर देता है। यह उन दशाओं में और भी अधिक लाभदायक हो जाता है, जब मनुष्य थक गया अथवा शक्ति की कमी अनुभव करता हो।

३—पीड़ा दूर करना

सीधे पड़कर अथवा सीधे बैठकर, यह ख़याल करते हुए कि तुम प्राण खींच रहे हो, ताल-युक्त श्वास लो। तब जब निःश्वास लो, प्राण को पीड़ित स्थान पर रुधिर-संचार तथा तंतुधारा को ठीक करने के लिये भेजो। फिर पीड़ित दशा को दूर करने के लिये और प्राण खींचो। तब यह ध्यान करते हुए कि तुम पीड़ा को दूर कर रहे हो, निःश्वास छोड़ो। दोनों मानसिक आज्ञाएँ एक दूसरे के बाद दिया करो, जिससे एक निःश्वास से तो पीड़ित भाग उत्तेजित हो, और दूसरे से पीड़ा दूर हो। सात श्वास तक यही क्रिया जारी रक्खो। तब साफ़ करनेवाली क्रिया करके थोड़ा विश्राम कर लो। जब तक पीड़ा दूर न हो जाय, तब तक यही प्रयोग करते रहो। पीड़ा बहुत शीघ्र हट जायगी। बहुत-सी पीड़ाएँ तो पहली सात साँसों के ख़त्म होने के पहले ही दूर हो जाती हैं। यदि पीड़ित भाग पर हाथ भी रक्खे रहो, तो और भी शीघ्र कार्यसिद्धि होगी। प्राण की धारा को भुजाओं से होते हुए पीड़ित भाग में भेजो।

४—रुधिर-संचार को प्रेरित करना

सीधे पड़कर या सीधे बैठकर ताल-युक्त श्वास लो, और निःश्वास के साथ अभीष्ट स्थान पर, जहाँ अधूरे रुधिर-संचार के कारण कोई दुःख उत्पन्न हो गया हो, रुधिर-संचार को प्रेरित करो। यह पैरों के सर्द हो जाने और सिर की

पीड़ा में बड़ा काम देता है। दोनों दशाओं में रुधिर-संचार नीचे की ओर प्रेरित किया जाता है। पहली दशा में तो पैर गर्म हो जाते हैं, और दूसरी में मस्तिष्क के ऊपर का अधिक दबाव हट जाता है। सिर दुखने में पहले पीड़ा हटाने की क्रिया करो, तब रुधिर-संचार को नीचे प्रेरित करो। ज्यों-ज्यों रुधिर-संचार नीचे की ओर होगा, त्यों-त्यों टाँगों में तुम्हें गरमी का अनुभव होने लगेगा। रुधिर-संचार तो अधिकांश दृढ़ इच्छा की प्रेरणा पर निर्भर है, और ताल-युक्त श्वास इस क्रिया को और भी सरल कर देती है।

५—अपना रोग आप दूर करना

ढीले पड़कर ताल-युक्त श्वास लो, और यह आज्ञा दो कि खूब अधिक प्राण श्वास द्वारा खींचा जाय। निःश्वास के साथ इस प्राण को, रुग्ण स्थान पर, उसे उत्तेजित करने के लिये भेजो। कभी-कभी निःश्वास के साथ-साथ यह मानसिक आज्ञा भी दो कि रुग्णावस्था हटाकर भगा दी जाय। इस अभ्यास में हाथों का भी प्रयोग करो। सिर से लेकर रुग्ण भाग तक हाथ फेरो। अपना या दूसरों का रोग दूर करने के लिये जब हाथ फेरा करो, तब सर्वदा यह कल्पना किया करो कि प्राण तुम्हारी भुजाओं में प्रवाह करता हुआ उँगलियों के छोरों से शरीर में प्रवेश कर रहा और इस प्रकार रुग्ण अंग तक पहुँचकर उसे चंगा कर रहा है। इस पुस्तक में हम केवल साधारण संकेत बतला सकते हैं। प्रत्येक रोग

का उल्लेख इस छोटी-सी किताब में नहीं हो सकता। परंतु इसी अभ्यास को प्रत्येक रोग के अनुकूल बनाकर प्रयोग करना आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न करेगा। कोई-कोई योगी दोनों हाथ रुग्ण भाग पर रखते हैं, और तब ताल-युक्त श्वास लेते हैं। फिर वे यह कल्पना करते हैं कि हम रुग्ण अंग या अवयव में पम्प की भाँति प्राण की धारा बहा रहे हैं, जिससे यह उत्तेजित हो जायगा, और इसका दुःख दूर हो जायगा। इसकी कल्पना वैसी ही है, जैसे घड़े-भर मैले पानी में अधिक साफ़ पानी पम्प द्वारा छोड़ा जाय, तो वह घड़े के मैले पानी को बहाकर उसे साफ़ पानी से भर देगा। यह अंतिम ढंग बहुत ही कारगर है, यदि पम्प की कल्पना साफ़-साफ़ मन में उपस्थित रहे कि साँस लेना तो मानों पम्प के मुठिया को ऊपर उठाना है, और निःश्वास छोड़ना मानों पम्प द्वारा भरना।

६—दूसरों को चंगा करना

हम प्राण के मानसिक प्रयोगों द्वारा रोग छुड़ाने का विषय किताब में नहीं ले सकते; क्योंकि यह विषय ही इस पुस्तक के विषय से भिन्न है। परंतु हम सीधी-सादी बातें यहाँ बतला सकते हैं, और बतावेंगे भी, जिनके द्वारा तुम दूसरों के दुःख हटाने में समर्थ हो सकते हो। मुख्य बात स्मरण रखने की यह है कि तुम एकाग्रचित्त होकर ताल-युक्त श्वास द्वारा बहुत-सा प्राण प्राणभांडार से खींच सकते

और उसको दूसरे के शरीर में भर सकते हो, जिससे निर्बल अंग और अवयव उत्तेजित हो सकते हैं, और उनकी रुग्णावस्था दूर होकर उन्हें स्वास्थ्य-लाभ हो सकता है। पहले तुमको अभीष्ट दशा की ऐसी स्पष्ट कल्पना करनी पड़ेगी। तब तुम्हें वास्तव में अनुभव होने लगेगा कि प्राण का प्रवाह तुममें हो रहा है, और उसकी धारा तुम्हारी भुजाओं और उँगलियों में होती हुई रोगी के शरीर में बह रही है। पहले कई बार तालयुक्त श्वास लो, जिससे ताल बँध जाय। तब रोगी के शरीर के रुग्ण भाग पर अपने हाथ रक्खो, ताकि तुम्हारे हाथ केवल स्पर्श-मात्र करते रहें। तब उसी पम्पवाले तरीक़े का प्रयोग करो, जिसका वर्णन इसके पूर्ववाले अभ्यास (अपना रोग आप दूर करना) में किया गया है; और रोगी को प्राण से भर दिया करो, जब तक कि उसकी रुग्णावस्था दूर न हो जाय। कभी-कभी हाथ हटाकर, उँगलियों को झटका देकर झाड़ दो, मानों तुम रुग्णावस्था को झटका देकर फेंक रहे हो। कभी-कभी ऐसा कर लेना अच्छा होता है। प्रयोग के पश्चात् हाथ भी धो डालना चाहिए; नहीं तो रोगी के रोग की छूत भी प्रवेश कर जाने का भय रहता है। प्रयोग के पश्चात् कई बार साफ़ करनेवाली क्रिया भी कर लेनी चाहिए। प्रयोग की दशा में प्राण को लगातार एक धारा में रोगी के शरीर में भरो। तुम स्वयं अपने को पम्प की वह कल समझो, जो

प्राण के विश्वभांडार से प्राण लेकर रोगी के शरीर में भर रही है, और तुम्हारे द्वारा वह प्राण बह रहा है। तुम्हें अपने हाथों पर ज़ोर न देना चाहिए। आवश्यकता केवल इतनी ही बात की है कि प्राण रुग्ण भाग में बेखटके पहुँचता रहे। प्रयोग के समय अक्सर तालयुक्त साँस लेनी चाहिए, जिससे ताल ठीक बनी रहे, और प्राण को निर्बाध रास्ता मिलता रहे। बेहतर होता कि हाथ नंगे शरीर पर रक्खा जाता। परंतु जहाँ यह उचित नहीं अथवा असंभव है, वहाँ कपड़ों ही के ऊपर रक्खो। कभी-कभी प्रयोग के समय रुग्ण अंग को धीरे-धीरे और मुलायमियत से उँगलियों से ठोकते जाओ। उँगलिया एक दूसरी को स्पर्श न किए रहें, किंतु पृथक्-पृथक् रहें। यह रोगी को बहुत सुखदायक होता है। यदि रोग पुराना हो, तो तुम्हें यह और भी लाभदायक मालूम होगा कि शब्दों में ऐसी मानसिक आज्ञाएँ दो, जैसे "निकल जाओ, निकल जाओ," अथवा "बलवान् हो, बलवान् हो;" या फिर जैसी स्थिति हो। तुम्हें इन शब्दों से इच्छाशक्ति को और भी अधिक बल के साथ ठीक स्थान में प्रयोग करने में सहारा मिलेगा। इन संकेतों को रोग की दशा के अनुकूल बदलते जाओ, और अपने विचारों और आविष्कार शक्ति से काम लो। हमने तुम्हें साधारण तत्त्व बतला दिया है। तुम इसका सैकड़ों भिन्न-भिन्न तरीक़ों से प्रयोग कर सकते हो। ऊपर लिखा हुआ

संकेत यद्यपि बहुत ही सीधा प्रतीत होता है; परंतु यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन और प्रयोग किया जाय, तो उन सब कार्यों को सिद्ध कर देगा, जिन्हें "आकर्षण द्वारा रोग चंगा करनेवाले" अपने लंबे और पेचीदे प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। वे दरअसल प्राण ही का प्रयोग अज्ञात रूप से करते हैं, पर उसे आकर्षण कहते और समझते हैं। यदि वे अपने आकर्षण के प्रयोग के साथ ताल-युक्त श्वास को भी मिला दें, तो उनके प्रयोगों का प्रभाव दुगना हो जाय।

७—दूर से रोग चंगा करना

यदि प्राण के साथ प्राणप्रयोक्ता की प्रेरणा का रंग चढ़ा दिया जाय, तो यह प्राण दूर के रोगियों तक—यदि वे उसे ग्रहण करने की अकांक्षा बनाए रहें—भेजा जा सकता है, और इस प्रकार भी रोग दूर करने की क्रिया की जा सकती है। यही दूर से रोग चंगा करने का गुप्त भेद है, जिसकी पश्चिमी दुनिया में इतनी महिमा सुनी जाती है। प्रयोक्ता की रोग हटानेवाली दृढ़ आकांक्षा, प्रयोक्ता के प्राण को प्रेरणा करती और उस पर रंग चढ़ा देती है, जिससे वह आकाश में विद्युत् की नाईं दौड़ता हुआ रोगी के मानसिक संगठन में प्रवेश कर जाता है। वह अदृश्य रहता है, और मारकोनी की बेतार की विद्युत् की भाँति बीच की रुकावटों को पार करता हुआ ठीक उसी मनुष्य के पास जा पहुँचता है, जो उसे ग्रहण करने की अभिलाषा से पड़ा हुआ है। यदि

दूर के मनुष्य पर प्रयोग करना हो, तो पहले उस मनुष्य के रूप की मानसिक कल्पना करो; तब उसके और तुम्हारे बीच में प्राण की धारा द्वारा लगाव हो जायगा। यह मानसिक प्रयोग है, और प्रयोक्ता की मानसिक कल्पना-शक्ति पर अवलंबित है। जब तुम्हारे और उस मनुष्य के बीच में संबंध हो जायगा, तो तुम उसका अनुभव भी कर सकोगे; क्योंकि वह मनुष्य निकटस्थ प्रतीत होने लगेगा। यह बात बहुत ही सीधी है और इसके बहुत वर्णन की आवश्यकता नहीं है। यह थोड़े ही अभ्यास से सिद्ध हो जाती है। बाज़-बाज़ मनुष्य तो पहले ही प्रयत्न में सफल हो जाते हैं। जब लगाव स्थिर हो जाय, तो दूरस्थ रोगी से मन-ही-मन यों कहो कि "मैं तुम्हारे पास जीवनी-शक्ति भेजता हूँ; इससे तुम्हें बल मिलेगा, और यह तुम्हें चंगा करेगी।" तब प्राण की कल्पना करो कि तुम्हारे तालयुक्त श्वास के प्रत्येक निःश्वास के साथ वह प्राण तुममें से निकलकर, पल-भर में रोगी के पास पहुँचकर उसे चंगा कर रहा है। यह आवश्यक नहीं कि इस क्रिया के लिये तुम कोई समय निश्चित कर लो। पर यदि तुम चाहो, तो ऐसा भी कर सकते हो। रोगी की तुमसे संजीवनी पाने की अभिलाषा उसके द्वार को तुम्हारे मानसिक प्रयोग के प्रवेश के लिये खोले रहेगी, और जब कभी तुम अपनी धारा उसके पास भेजोगे, वह ग्रहण कर लेगा। यदि तुम कोई समय निश्चित

कर लो, तो उस समय रोगी को अपने शरीर को बिलकुल ढीला कर देना चाहिए, और धाराओं के ग्रहण करने की उसे प्रबल आकांक्षा रखनी चाहिए। ऊपर लिखी हुई बात ही पश्चिमी दुनिया के "दूरस्थ रोग-निवारण" का मूलतत्त्व है। तुम थोड़े ही अभ्यास से इसको वैसी ही खूबी से कर सकते हो, जैसी खूबी से सुप्रसिद्ध चंगा करनेवाले इसे करते हैं।

पंद्रहवाँ अध्याय

योगी की मानसिक साँस के अन्य प्रयोग

१—मन का संदेश भेजना

पिछले वर्णन किए हुए अभ्यास के अनुसार संदेश भी दूसरे मनुष्यों के पास भेजा जा सकता है, और वे लोग इन भेजे हुए संदेशों का अनुभव कर सकते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस मनुष्य के विचार अच्छे हैं, उसे दूसरों के प्रेरित विचारों से कुछ भी हानि नहीं पहुँच सकती। अच्छे विचार सर्वदा बुरे विचारों के लिये अटल होते हैं, और बुरे विचार सर्वदा अच्छे विचारों के सम्मुख विचलित हो जाते हैं। एक मनुष्य इस प्रकार अपने विचारों को प्राण की धारा के साथ दूसरों के मन तक पहुँचाकर उसके ध्यान और मन को आकर्षित कर सकता है। यदि तुम किसी के प्रेम और सहानुभूति की इच्छा करते हो, जिसके साथ तुम स्वयं भी प्रेम और सहानुभूति रखते हो, तो तुम उसके पास ऐसे विचार भेज सकते हो, और तुम्हारा प्रयोग सफल भी हो सकता है। परंतु केवल उसी दशा में, जब तुम्हारा उद्देश्य पवित्र और निष्कपट होगा। किसी को हानि पहुँचाने या अपना स्वार्थ-साधन करने के लिये कभी दूसरे पर प्रभाव

डालने की इच्छा मत करो; क्योंकि इस प्रकार के विचार जब दूसरों पर प्रयुक्त किए जाते हैं, तब दुगने बल से प्रयोक्ता ही पर आ पड़ते और उसकी हानि कर डालते हैं, और वह दूसरा मनुष्य निष्कंटक बच जाता है। यह मानसिक प्रयोग जब उचित रीति से किया जाता है, तब तो ठीक है, परंतु अनुचित प्रयोगों (अनुचित मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि) से सर्वदा ख़बरदार रहना; क्योंकि ऐसा करना अपने ही ऊपर आपत्ति को बुलाना है। कोई असद्वासनावाला मनुष्य कभी अधिक मानसिक शक्ति पा ही नहीं सकता; और पवित्र विचार और हृदयवाला मनुष्य इन दुर्वासनावाले प्रयोक्ताओं के लिये अभेद्य भी होता हैं। अतः अपने को पवित्र रक्खो; कोई तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता।

२—कवच रचना

यदि कभी तुम नीच प्रवृत्तिवाले मनुष्यों की संगति में पड़ जाते हो, तब तुम्हें उनके विचारों का उद्वेगजनक प्रभाव प्रतीत होने लगता है। ऐसी दशा में थोड़ी ताल-युक्त साँस लो, जिससे तुम्हारे पास प्राण अधिक हो जाय। और, तब मानसिक कल्पना द्वारा अपने चारों ओर विचार का अंडाकार घेरा डाल दो। यही कवच बन जायगा, और दूसरों के मलिन विचारों और नीच प्रभावों से तुम्हें सुरक्षित रक्खेगा।

३—अपने में आप ही प्राण भरना

यदि तुम्हें मालूम हो कि तुम्हारी जीवनी-शक्ति कुछ क्षीण हो गई है, और तुम्हें अधिक शक्ति की आवश्यकता है, तब इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि पैरों को परस्पर सटा दो, और दोनों हाथों की उँगलियों को एक में, जैसा चाहो वैसा, संग्रथित कर दो। इसको मंडल बाँधना कहते हैं। इसके करने से तुम्हारे शरीर के छोरों से प्राण निःसृत नहीं हो सकता। अब ताल-युक्त श्वास लो। कई बार श्वास लेने से तुम्हें जान पड़ेगा कि तुम्हारा शरीर प्राण से परिपूर्ण हो गया।

४—दूसरों में प्राण भरना

यदि तुम्हारे किसी मित्र की जीवनी-शक्ति क्षीण हो गई हो, तो तुम उसकी भी सहायता कर सकते हो। उसके सामने इस प्रकार बैठ जाओ कि तुम्हारे चरणों की उँग-लियाँ उसके चरणों की उँगलियों को छूती रहें, और उसके हाथ तुम्हारे हाथों में हों। दोनों आदमी ताल-युक्त श्वास लो। तुम तो यह कल्पना करो कि उसके शरीर में प्राण भेज रहे हो; और वह यह कल्पना करे कि वह प्राण ग्रहण कर रहा है। निर्बल जीवट और निर्बल संकल्पवाले मनुष्य को इस विषय में सर्वदा सावधान रहना चाहिए कि किसके साथ प्रयोग कर रहे हैं; क्योंकि दुष्ट विचारवाले मनुष्य के प्राण भी उसके विचारों के रंग में रँगे हुए होंगे, और निर्बल

मनुष्य के ऊपर थोड़ा बुरा प्रभाव, थोड़े अर्से के लिये, डाल सकते हैं। ऐसी दशा में निर्बल जीवट और संकल्पवाला मनुष्य अपने शरीर के मंडल को बाँधकर थोड़ी ताल-युक्त साँस ले ले। फिर सफ़ाई करनेवाली क्रिया कर डाले। बस, निवृत्ति हो जायगी।

५—पानी में प्राण का भरना

पानी में भी प्राण भरा जा सकता है। उसकी विधि यह है—

बाएँ हाथ की हथेली पर पानी से भरा हुआ ग्लास लो, फिर दाहने हाथ की उँगलियों को एकत्रित करके पानी पर धीरे-धीरे झाड़ो, जैसे तुम्हारी उँगलियों के छोरों पर पानी की बूँदें हों, और उन्हें तुम ग्लास में झाड़ रहे हो। किंतु मानसिक कल्पना यह किए रहो कि उँगलियों के द्वारा प्राण तुम्हारे शरीर से पानी में जा रहा है। इस प्रकार की स्थिति में कुछ तालयुक्त श्वास लो; बस, पानी में प्राण भर जायगा। यह पानी निर्बल और सुस्त मनुष्य को उत्तेजना देनेवाला होता है, विशेषकर उस दशा में, जब प्राण भरनेवाला चंगा करने के विचारों को भी उसमें प्राण के साथ छोड़ता जाय। पिछले अभ्यास में जो चेतावनी दी गई है, उसका ध्यान यहाँ भी रखना होगा। वहाँ और यहाँ अंतर केवल इतना ही है कि जितनी हानि वहाँ हो सकती है, उतनी यहाँ नहीं; हानि की मात्रा यहाँ बहुत घट जायगी।

६—मानसिक गुणों को प्राप्त करना

दृढ़ इच्छा की प्रेरणा से मन केवल शरीर ही को अधिकृत नहीं कर सकता, किंतु स्वयं मन भी दृढ़ इच्छा की प्रेरणा के अभ्यास द्वारा शिक्षित और परिमार्जित हो सकता है। जिस बात को पश्चिमी संसार मानसिक विद्या कहकर अब जानता है, वह उसी बात का एक खंड-मात्र है, जिसे योगी लोग बहुत दिनों से जानते हैं। दृढ़ इच्छा की केवल शांत आज्ञा इस विषय में आश्चर्यजनक कार्य कर दिखावेगी। परंतु मानसिक अभ्यास के साथ-साथ यदि तालयुक्त श्वास हो, तो फल और भी अधिक बढ़ जायगा। श्वास लेते समय अभीष्ट गुण की कल्पना करने से अभीष्ट मानसिक गुण प्राप्त हो जायगा। क्षमा, आत्मनिग्रह इत्यादि, सभी गुण इस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं, और अनिष्ट मानसिक त्रुटियाँ भी दूर हो सकती हैं। उसकी रीति यह है कि त्रुटि के विरोधी गुण को जगाओ। मानसिक विद्या की जितनी कसरतें, व्यावहारिक प्रयोग और मंत्र हैं, वे सब योगी की तालयुक्त श्वास द्वारा सिद्ध हो सकते हैं। नीचे लिखा हुआ अभ्यास मानसिक अभीष्ट गुणों को प्राप्त और पुष्ट करने के लिये बहुत अच्छा है—

शांतचित्त होकर लेट जाओ, या साधे बैठ जाओ। जिस गुण को तुम प्राप्त करना चाहते हो, उसकी मानसिक कल्पना करो, मानों तुम उस गुण से युक्त हो। और, दृढ़

इच्छा की प्रेरणा करो कि वह गुण पुष्ट होकर तुममें बना रहे। इस कल्पना को धारण किए हुए तालयुक्त श्वास लो। यथासाध्य उस मानसिक कल्पना को सदैव धारण किए रहो, और अब ऐसा बर्ताव आरंभ करो, मानों तुम उस अभीष्ट गुण से युक्त हो। अपनी भावना के अनुसार तुम उस गुण में उन्नति करते हुए पाए जाओगे। श्वास की ताल मन के नए संयोगों के जुटने में सहायता देती है।

७—शारीरिक गुणों को प्राप्त करना

ऊपर लिखी विधि से जैसे मानसिक गुण प्राप्त किए जाते हैं, वैसे शारीरिक गुण भी प्राप्त हो सकते हैं। मेरा यह मतलब नहीं कि नाटे मनुष्य लम्बे हो सकते हैं, कटे हुए अंग नए बन सकते हैं, या इसी प्रकार की कोई और करामात हो सकती है। अभिप्राय यह कि चेहरे का विकास बदल सकता है, शारीरिक दशा बहुत कुछ सुधर सकती और उन्नति कर सकती है। विधि वही है—तालयुक्त श्वास के साथ-साथ दृढ़ इच्छा की प्रेरणा। मनुष्य जैसा विचार करता है, वैसा ही वह दिखाई पड़ता है, कार्य करता है, चलता है, बैठता है। इत्यादि। अपने विचारों को उन्नत कर लो; फिर उन्नत दिखाई दोगे, और उन्नत कार्य करने लगोगे। शरीर के किसी अंग को पुष्ट और उन्नत करना हो, तो ताल-युक्त श्वास लेते समय उसी अंग पर ध्यान जमाओ। मान-सिक कल्पना करो कि उस अंग में तुम अधिक प्राण या

तंतुबल प्रवाहित कर रहे हो, और इस प्रकार उसके ओवट को बढ़ा और पुष्ट कर रहे हो। यह तरीक़ा शरीर के किसी अंग को भी पुष्ट करने के लिये ठीक होगा। बहुत-से पश्चिमी पहलवान अपनी कसरत में इसी विधि के किसी रूपांतर को सम्मिलित कर लेते हैं। साधारण विधि वही पूर्ववाली (मानसिक गुण प्राप्त करनेवाली) विधि है। शारीरिक पीड़ाओं के दूर करने का दिग्दर्शन पहले ही कराया जा चुका है।

८—मानसिक वृत्तियों पर अधिकार करना

अनिष्ट वृत्तियाँ—जैसे भय, शोक, चिंता, घृणा, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि—भी अपनी इच्छा के वश में लाई जा सकती हैं; और इच्छा यदि ताल-युक्त श्वास के साथ प्रेरित की जाय, तो उसका प्रभाव और भी अधिक और सरलता से पड़ेगा। ज्यों ही तुम निःश्वास छोड़ने लगो, त्यों ही मानसिक आज्ञा दो, और कल्पना करो कि निःश्वास के साथ-ही-साथ अनिष्ट वृत्तियाँ बाहर फेंकी जा रही हैं। सात बार ऐसा करो; फिर सफ़ाईवाली साँस लेकर समाप्त कर दो। तब देखो कि तुम्हें कैसा अच्छा मालूम होता है। मानसिक आज्ञा दृढ़तापूर्वक देनी चाहिए। खेल से काम न चलेगा।

९—जनन-शक्ति को परवर्तित करना

योगी लोग स्त्री और पुरुष, दोनों की कामशक्तियों के प्रयोग और कुप्रयोग का बहुत बड़ा ज्ञान रखते हैं। इस ज्ञान का

कुछ अंश उनके मंडल के बाहर प्रकाशित हो गया है, और इन्हीं विषयों में पश्चिमी लेखकों ने उन्हें लिख डाला है, जिससे बहुत लाभ हुआ है। इस छोटी-सी किताब में हम दिग्दर्शन-मात्र करा देने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते। केवल नामोल्लेख के अतिरिक्त और सब बातों को छोड़कर हम श्वास लेने का एक अभ्यास बतलावेंगे, जिसके द्वारा साधक अपने कामवेग को सारे शरीर के जीवट-रूप में परिवर्तित कर सकता है। यह बहुत ही अच्छी बात है कि कामवेग को व्यर्थ स्वस्त्री और परस्त्री में न खोकर, उसे सारे शरीर के उपकारार्थ जीवट-रूप में बदल दिया जाय। काम-शक्ति जनन-शक्ति है। इसको सारा शरीर खींच सकता है, और यह जीवट और बल-रूप में परिवर्तित हो सकती है। इस प्रकार जनन के स्थान पर यह बल-सम्बर्द्धन कर सकती है। यदि नवयुवक-गण इस मूल मंत्र को समझ जाते, तो भविष्य के बहुत-से कष्टों और संतापों से बच जाते, और मन, शरीर और धर्म में बहुत बलवान् हो जाते।

इस कामवेग के परिवर्तन करने से अभ्यासी को बड़ा जीवट प्राप्त हो जाता है। इससे अभ्यासी जीवट-बल से परिपूर्ण हो जाते हैं। यह तेज रूप में उनके शरीर पर द्युतिमान हो जाता है। व्यक्तिगत तेज भी इसी को कहते हैं। इस प्रकार परिवर्तित शक्ति को दूसरे मार्गों में प्रवाहित करके, उससे बड़े-बड़े काम ले सकते हैं। प्रकृति ने बहुत-सी प्राण-

शक्ति को इस थोड़े-से रज या वीर्य में एकत्रित कर दिया है; क्योंकि इनका कार्य जनन अर्थात् उत्पादन करना है। अति अधिक जीवट-बल बहुत थोड़े स्थान में एकत्रित रहता है। जननेन्द्रियाँ जंतुओं के जीवन में प्राण की एक भांडार-रूप हैं। उनकी शक्ति को हम ऊपर खींच सकते, उससे काम ले सकते तथा जनन कर सकते हैं, अथवा अनर्थकारी भोगों में उन्हें नष्ट कर सकते हैं। हमारे शिष्यों में अधिकांश इसके बल-वर्द्धन को जानते होंगे। ऊपर लिखी हुई बातों के कह देने के सिवा और अधिक यहाँ हम कुछ नहीं कह सकते।

कामवेग को परिवर्तित करनेवाला योगियों का अभ्यास बहुत ही सादा और सरल है। यह ताल-युक्त श्वास से मिला है, और बहुत आसानी से किया जा सकता है। इसका अभ्यास किसी भी समय कर सकते हैं; पर अत्यंत उपयुक्त समय वह है, जब काम का वेग प्रबल हो। उस समय जनन-शक्ति प्रकट रहती है, और उसे बड़ी आसानी से बल-वर्द्धन-शक्ति में बदल सकते हैं। अभ्यास नीचे लिखा जाता है—

अपना ध्यान केवल उस शक्ति पर लगाओ, काम-कल्पनाओं को छोड़कर केवल उस शक्ति पर खयाल जमाओ। यदि काम-कल्पनाएँ भी अनायास आ जायँ, तो कुछ चिंता मत करो। यही समझ लो कि यह उस बल का विकास है, जिसे हम शरीर या मन के पोषण में लगाना चाहते हैं।

शांत होकर लेट जाओ, या सीधे बैठ जाओ, और यह कल्पना करो कि हम जनन-शक्ति को नीचे से खींचकर ऊपर सौर्य-केंद्र में ला रहे हैं, जहाँ यह जनन-शक्ति से परिवर्तित होकर प्राण-रूप में संचित रहेगी। अब यह कल्पना करते हुए ताल-युक्त श्वास लो कि प्रत्येक श्वास में तुम शक्ति को ऊपर खींच रहे हो। प्रत्येक श्वास में दृढ़ इच्छा को आज्ञा दो कि शक्ति जननेन्द्रियों से खिंचकर सौर्यकेंद्र में चली आवे। यदि ताल खूब ठीक हो गया होगा, और कल्पना स्पष्ट हो गई होगी, तो तुम्हें मालूम होता रहेगा कि यह शक्ति ऊपर उठी आ रही है, और तुम उसकी उत्तेजना के प्रभाव का भी अनुभव करोगे। यदि तुम अपना मानसिक बल बढ़ाना चाहते हो, तो इसे सौर्य-केंद्र में भेजने के स्थान पर मस्तिष्क में भेजो, उसी के अनुकूल आज्ञा दो, और कल्पना करो।

जो पुरुष या स्त्री मानसिक अथवा शारीरिक रचना का कार्य कर रहे हों, वे ऊपर के अभ्यास द्वारा इस शक्ति को इस तरह अपने काम में लगा सकते हैं कि प्रत्येक श्वास में तो शक्ति को ऊपर खींचे, और प्रत्येक निःश्वास में उसे निर्दिष्ट स्थान पर भेजें। इस अंतिम दशा में केवल कार्य के अनुरूप शक्ति तो कार्य में जायगी; शेष सौर्यकेंद्र में संचित होगी।

आप लोग तो अवश्य यह समझते होंगे कि यह जलवत् वीर्य न तो ऊपर को खींचा जाता और न परिवर्तित किया जाता है; किंतु उसकी प्राणशक्ति ही खींची जाती है, जिससे

वह वीर्य इतना प्रबल हो रहा था। इस परिवर्तन के अभ्यास के समय सिर को थोड़ा आगे सरलता-पूर्वक स्वाभाविक रीति से झुका लेना अच्छा होगा।

१०—मस्तिष्क को उत्तेजित करना

योगी लोगों ने नीचे-लिखे अभ्यास को स्पष्ट सोचने-विचारने के अभिप्राय से मस्तिष्क की क्रियाओं को उत्तेजित करने में बहुत ही लाभदायक पाया है। मस्तिष्क और तंतु-जाल को शुद्ध करने में इसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। जिनको मानसिक प्रयत्न करना पड़ता है, उनके लिये तो यह अभ्यास दोनों प्रकार से बहुत ही उपयोगी होगा—एक तो उत्तम कार्य करने में, और दूसरे अधिक मानसिक काम करने के उपरांत मन को फिर ताज़ा, चंगा बनाने और उसे साफ़ करने में।

सीधा बैठो। मेरुदंड को भी सीधा रक्खो। आँखें सामने की ओर रहें। दोनों हाथ जाँघों के ऊपरी भागों पर पड़े रहें। तालयुक्त श्वास लो; परंतु दोनों नासिका-पुटों द्वारा साँस खींचने के स्थान पर, जैसा कि साधारण अभ्यासों में करते आए हो, बाएँ नासिका-पुट को बाएँ हाथ के अँगूठे से बंद करो, और केवल दाहने पुट से श्वास खींचो। तब अँगूठा हटा लो, दाहने पुट को उँगली से बंद करो, और तब बाएँ पुट से निःश्वास फेंको। फिर बिना उँगली बदले बाएँ ही पुट से श्वास खींचो, और उँगली बदलकर दाहने

पुट से निःश्वास को बाहर निकालो। तब दाहने पुट से श्वास खींचो, और बाएँ पुट से निकालो। इसी प्रकार करते जाओ। ऊपर-लिखे अनुसार पुटों से बारी-बारी से काम लो, और जिस पुट से काम लो, उसे अँगूठे या उँगली से बंद रक्खो। यह योगियों के श्वास का एक बहुत प्राचीन तरीक़ा है, और बहुत ही उपयोगी और प्रधान है। यह सीखने ही योग्य है। यह जानकर योगी लोग बहुत हँसते हैं कि पश्चिमी दुनिया केवल इसी एक अभ्यास को योग का सारा मूल मंत्र समझती है। बहुत-से पश्चिमी पाठक जब योगी की श्वास-क्रिया की कल्पना करते हैं, तो उनके ध्यान में यही आता है कि एक हिंदू सीधा बैठा है, और श्वास लेने में कभी इस पुट को बंद करता है, तो कभी उसे खोलता है, और कभी उसे बंद करता है, तो इसे खोलता है। वे समझते हैं कि बस, इतना ही है, और कुछ नहीं। हम आशा करते हैं कि इस छोटी किताब से पश्चिमी दुनिया की आँखें खुल जायँगी कि यह योग क्या-क्या कर सकता है, और इसके कितने साधन हैं।

११—योगी की मानसिक महाश्वास

योगियों को एक श्वास-क्रिया बड़ी ही प्रिय है, जिसका वे कभी-कभी अभ्यास करते हैं। उसी क्रिया को हम यहाँ योगी की मानसिक महाश्वास कहते हैं। हमने इसको अंत में इसलिये दिया है कि इसमें ताल-युक्त श्वास और मानसिक

कल्पना, दोनों की आवश्यकता पड़ती है, और हमारे शिष्य अब आकर दोनों साथ-साथ करने के योग्य हुए हैं। इस महाश्वास की महिमा इसी पुरानी कहावत से समझ लेनी चाहिए कि "धन्य है वह योगी, जो अपनी हड्डियों द्वारा श्वास ले सकता है।" इस अभ्यास से सारा शरीर प्राण से परिपूर्ण हो जायगा, और साधक जब इस अभ्यास से निकलेगा, तो उसकी प्रत्येक हड्डी, पुट्ठा, तंतु, परमाणु, अवयव और भाग, प्राण और ताल से शराबोर होंगे। यह शरीर की सबसे बड़ी सफ़ाई है; और जो मनुष्य सावधानी से इसका अभ्यास करता है, उसे ऐसा मालूम होगा कि उसका शरीर फिर नया हो गया—सिर से लेकर पैर तक मानों नया गढ़ गया। अभ्यास यों है—

(१) बिलकुल ढीले होकर पूरे आराम से लेट जाओ।

(२) तब तक ताल-युक्त साँस लो, जब तक ताल ठीक न हो जाय।

(३) तब साँस लेने और छोड़ने के समय यह कल्पना करो कि साँस टाँगों के मार्ग आ रही और उसी मार्ग से जा रही है। फिर भुजाओं की हड्डियों के मार्ग से, फिर खोपड़ी के सिरे से, फिर आमाशय से, फिर मानों मेरुदंड में नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे दौड़ रही है। फिर मानों साँस शरीर के चमड़े के प्रत्येक छिद्र से आ और जा रही है, मानों सारा शरीर प्राण और जीवन से भर गया है।

(४) तब (तालयुक्त साँस लेते हुए) प्राण की धारा को सातों मार्मिक स्थानों में बारी-बारी से भेजो, जैसा नीचे दिया जाता है। परंतु ध्यान रहे, मानसिक कल्पनाएँ भी, जैसा पहले कहा गया है, साथ-ही-साथ होती रहें—

(क) ललाट में

(ख) सिर के पिछले भाग में

(ग) मस्तिष्क के आधार में

(घ) सौर्यकेंद्र में

(ङ) मेरुदंड के निचले भाग में

(च) नाभी में

(छ) जननेन्द्रिय-स्थान में

सिर से पैर तक लगातार प्राण की धारा कई बार बहा-कर समाप्त कर दो।

(५) अंत में साफ़ करनेवाली क्रिया कर डालो।

सोलहवाँ अध्याय

योगी की आध्यात्मिक श्वास-क्रिया

योगी लोग अपनी दृढ़ इच्छा और तालयुक्त श्वास द्वारा केवल अभीष्ट मानसिक गुणों और शक्तियों को ही नहीं बढ़ाते और पुष्ट करते, वरन् उसी प्रकार वे आध्यात्मिक शक्तियों को भी पुष्ट करते हैं, अर्थात् उनके जागृत रहने में सहायता पहुँचाते हैं। पूर्वी शास्त्र बतलाते हैं कि मनुष्य में बहुत-सी शक्तियाँ हैं, जो अभी अविकसित अवस्था में पड़ी हैं; परंतु जब ये जीव और उन्नति करेंगे, तब उनका विकास होगा। वे यह भी बतलाते हैं कि मनुष्य अपनी दृढ़ इच्छा के द्वारा—यदि सुयोग आ जाय तो—अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के जगाने और उनके अतिशीघ्रता से पुष्ट होने में सहायता पहुँचा सकता है। अभिप्राय यह कि विकास की साधारण गति से जिस आध्यात्मिक दशा को मनुष्य-समुदाय बहुत दिनों में पहुँचेगा, उस दशा को, अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को जगाकर, योगी बहुत शीघ्र प्राप्त हो सकता है। इस अभिप्राय से जितने अभ्यास हैं, उनमें तालयुक्त श्वास-क्रिया बहुत बड़ा काम करती है। केवल श्वास ही लेने में ऐसा कोई गूढ़ रहस्य नहीं, जो इस आश्चर्यजनक

परिणाम को लाता है; किंतु वह ताल, जो योगी की ताल-युक्त श्वास-क्रिया से विकसित हो जाती है, ऐसी होती है कि सारे शरीर को, जिसके अंतर्गत मस्तिष्क भी है, पूरे अधिकार और प्रकृति के पूरे मेल में ले जाती है, और इस प्रकार गुप्त शक्तियों के जाग्रत करने का प्रकृति को खासा मौक़ा मिल जाता है।

इस पुस्तक में हम आध्यात्मिक उन्नति-विषयक पूर्वी शास्त्रों का गंभीर विचार न करेंगे; क्योंकि यह बड़ा गहन विषय है। इसके वर्णन में बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे जा सकते हैं, और यह इतना कठिन है कि साधारण पाठकों का जी भी न लगेगा। और भी दूसरे कारण हैं, जो योगियों को विदित हैं कि क्यों यह ज्ञान इस समय साधारण विद्याओं की भाँति फैल जाय। किंतु निश्चय रक्खो कि जब तुम्हारे लिये ठीक समय आवेगा कि तुम्हारी आध्यात्मिक गति आगे बढ़े, तब तुम्हारे सामने मार्ग खुल जायगा। जब चेला तैयार होता है, तो गुरु भी प्रकट हो जाते हैं। इस अध्याय में आध्यात्मिक ज्ञान के दो पटलों के विकसित होने के लिये हम अभ्यास देंगे—(१) अपने जीव के अस्तित्व का अनुभव और (२) इस जीव के विश्वव्यापी जीव से संबंध का अनुभव। नीचे दिए हुए दोनों अभ्यास बहुत सरल हैं, और उनमें मानसिक कल्पना तालयुक्त श्वास के साथ करनी होती है। शिष्य को प्रथम ही बड़ी-बड़ी आशाएँ न करनी

चाहिए, किंतु धीरे-धीरे गति तीव्र करनी चाहिए, और जिस प्रकार बीज से शनैः-शनै पुष्प विकसित होता है, उसी प्रकार विकास पाने के लिये धैर्य रखना चाहिए।

आत्मज्ञान

असली आत्मा न तो मनुष्य का शरीर है, और न उसका मन। ये तो उस व्यक्ति के अंग है, और अधीनस्थ हैं। असली आत्मा वह जीव है, जिसका विकास इस व्यक्ति में हुआ है। वह असली आत्मा इस शरीर से, जिसे वह पहने हुए है, परे है। वह इस मन से भी, जिसको वह असली रूप में धारण किए हुए है, परे है। असली आत्मा उस परमात्म-महासमुद्र का एक बिंदु है, और वह नित्य और अक्षय है। वह न तो मर सकता है, और न उसका नाश हो सकता है। शरीर की चाहे जो गति हो; पर आत्मा सर्वदा जीवित है। वह जीव है। तुम जीव को अपने से भिन्न मत समझो; क्योंकि तुम्हीं जीव हो, और यह शरीर तुम्हारा अनित्य और परिवर्तनशील अंग है, जो नित्य अपने परमाणुओं को परिवर्तित किया करता है, और जिसे तुम एक दिन छोड़ दोगे। तुम उन शक्तियों को जगा और विकसित कर सकते हो, जिनके द्वारा तुम जीव की असलियत का अनुभव कर सकते और यह जान सकते हो कि वह शरीर से परे है। इस विकास और जागृति के लिये योगियों का यह उपाय है कि असली जीव का ध्यान धरो; साथ-ही-साथ

तालयुक्त श्वास लो। नीचे लिखा हुआ अभ्यास बहुत सरल है—

अभ्यास—अपने शरीर को ढीलीढाली गिरी हुई दशा में रक्खो। तालयुक्त श्वास लो, और असली आत्मा का ध्यान धरो। यह सोचो कि तुम शरीर से पृथक् एक अस्तित्व हो, यद्यपि तुम इसे पहने हुए हो, और इच्छा-पूर्वक इसे उतार देने में समर्थ भी हो। अपने को शरीर नहीं, किंतु आत्मा खयाल करो, और शरीर को एक आवरण समझो, जो लाभदायक और सुखदायक तो है, पर तुम्हारा खास कोई अंग नहीं है। तुम अपने को एक स्वतंत्र सत्ता समझो, और शरीर को केवल अपने काम के लिये उपयोग में ला रहे हो। ध्यान करते समय शरीर को पूर्णतः भुला दो। तुम्हें मालूम होगा कि कभी-कभी तुम शरीर से बिलकुल बेखबर हो गए हो, और यह जान पड़ेगा कि तुम शरीर से बाहर हो, और अभ्यास कर चुकने के बाद उसमें लौटोगे।

योगी की ध्यानवाली श्वास के अभ्यासों का यही सार है, और यदि जी लगाकर अभ्यास किया जाय, तो जीव की असलियत का अद्भुत् परिचय करा देगा, और साधक को उसे शरीर से परे दिखा देगा। इस बढ़े हुए अनुभव के साथ-ही-साथ अमरत्व का भी ज्ञान हो जायगा, और उसे आध्यात्मिक जागृति के लक्षण विदित होने लगेंगे। वे लक्षण स्वयं उसे और दूसरों को भी दिखलाई देने लगेंगे। परंतु

साधक को इन ऊपरी लोकों में बहुत समय तक न रहना चाहिए, और न शरीर से घृणा ही करनी चाहिए; क्योंकि वह किसी अभिप्राय से यहाँ है, और उसे यहाँ की गढ़नेवाली जीवन-घटनाओं के सुअवसर के साथ लापरवाही न दिखानी चाहिए। उसे शरीर का आदर करने में चूकना भी न चाहिए। शरीर ही आत्मा का मंदिर है।

परमात्मा का अनुभव

मनुष्य की आत्मा, जो उसके जीव का सर्वोच्च विकास है, परमात्म-समुद्र का एक बिंदु है, जो पृथक् प्रतीत होता है, पर वस्तुतः वह समुद्र से ही नहीं, उसके प्रत्येक बिंदु से लगा हुआ है। ज्यों-ज्यों मनुष्य आत्मज्ञान को जगाता है, त्यों-त्यों वह परमात्मा से लगाव का अधिक-अधिक ज्ञान प्राप्त करता जाता है। कभी-कभी उसे ऐसा अनुभव होता है कि वह परमात्मा के साथ एक है, और तब उस लगाव और संबंध का भाव लुप्त हो जाता है। योगी लोग इस दशा को ध्यान और तालयुक्त श्वास द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं। और, बहुतों ने इसी प्रकार आध्यात्मिक उन्नति के उस उच्च शिखर को प्राप्त भी कर लिया है, जो मनुष्य के अस्तित्व की इस दशा के लिये संभव हो सकता है। इस पुस्तक के पाठक को इस समय महात्मा बनने की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि उस पदवी पर पहुँचने के पहले उसे बहुत कुछ करना है। परंतु उसे

परमात्मा के अनुभव-विषयक योगी के अभ्यासों की प्रारम्भिक स्थिति में भरती कर लेना अच्छा ही होगा। यदि उसे वास्तविक श्रद्धा है, तो वह अग्रसर हो सकेगा। नीचे लिखा हुआ अभ्यास उन मनुष्यों में परमात्मा का अनुभव जगाने में बहुत कुछ करेगा, जो मन-चित्त लगाकर इसका अभ्यास करेंगे —

अभ्यास—अपने शरीर को गिरी हुई ढीलीढीली अवस्था में रक्खो। तालयुक्त श्वास लो, और ध्यान करो कि तुम्हारा लगाव उस विश्वव्यापी मानस से है, जिसके तुम एक परमाणु हो। यह सोचो कि तुम सबसे लगाव रखते हो, और सबके साथ एक हो; सबको एक देखो, और अपने को भी उस एक का अंग जानो। कल्पना करो, तुम उस विश्व-मानस से लहराती हुई धाराओं और उसके बल, शक्ति और ज्ञान को ग्रहण कर रहे हो। नीचे लिखे हुए दो मार्गों का अनुसरण किया जा सकता है—

(अ) प्रत्येक श्वास में कल्पना करो कि तुम उस विश्व-मानस के बल और प्रभुता को खींच रहे हो, प्रत्येक निःश्वास में कल्पना करो कि उसी बल और प्रभुता को दूसरों की ओर प्रवाहित कर रहे हो, तुम प्रत्येक जीव के लिये प्रेम से भर गए हो, और तुम्हारी यह कामना है कि जिस प्रसाद को तुम पा रहे हो, उसको सभी पावें, वह विश्वशक्ति तुम्हीं में होकर प्रवाहित हो।

(ब) अपने मन को भक्ति की दशा में ले आओ, विश्व-मानस के महत्त्व का ध्यान करो, और परमेश्वरीय ज्ञान की धाराओं को ग्रहण करने के लिये अपने को खोल दो। वह तुम्हें ज्योतिर्मय ज्ञान से भर देगा, और तब तुम उसे अपने उन भाइयों और बहनों के लिये प्रवाहित करो, जिनसे तुम प्रेम रखते हो, और जिनकी सहायता करने की तुम्हें इच्छा रहती है।

जो इस क्रिया का अभ्यास करते हैं, उन्हें एक नए बल, शक्ति और ज्ञान का आवेश हो जाता है, और एक आध्यात्मिक उत्तेजना और आनंद का अनुभव होता है। इस अभ्यास को बड़ी श्रद्धा और भक्ति से करना चाहिए, न कि खेल की भाँति।

साधारण उपदेश

इस अध्याय के अभ्यासों के लिये मन की समुचित स्थिति और दशा होनी चाहिए। जो मनुष्य इनके साथ केवल खिलवाड़ करनेवाला है, जो गंभीर प्रकृति का नहीं है, जिसमें आध्यात्मिकता और श्रद्धा-भक्ति नहीं है, उसके लिये बेहतर है कि इन अभ्यासों को छोड़ दे; क्योंकि ऐसे मनुष्य को कुछ लाभ न होगा। इसके सिवा उच्च कोटि की बातों के साथ जान-बूझकर खिलवाड़ करनेवाले को कुछ नहीं प्राप्त होता। ये अभ्यास उन्हीं थोड़े-से मनुष्यों के लिये हैं, जो इन्हें समझते हैं। दूसरों की तो इनमें प्रवृत्ति ही नहीं होगी।

ध्यानावस्था में मन को उन्हीं विचारों में लगाओ, जो अभ्यास में दिए गए हैं। यह क्रिया तब तक किए जाओ, जब तक ध्यान स्पष्ट न हो जाय, और जब तक क्रमशः इसका आंतरिक अनुभव न होने लगे। इन अभ्यासों में अति मत करो, और जो आनंद की दशा प्राप्त हो, उसके कारण अपने मन में संसार से विरक्ति मत उत्पन्न होने दो; क्योंकि सांसारिक कार्य भी तुम्हारे लिये लाभदायक और आवश्यक हैं। तुम्हें अपनी शिक्षा (सांसारिक) से नहीं भागना चाहिए, चाहे वह तुम्हें कितनी ही नापसंद क्यों न हो। जो आनंद तुम्हें आत्मविकास से प्राप्त हो, उसी से संतुष्ट रहो, और जीवन की कठिनाइयों को सहने में समर्थ बनो, न कि असंतुष्ट और घृणा करनेवाले हो जाओ। इन अभ्यासों के साधन करनेवाले बहुत-से शिष्यों के मन में और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा होगी। निश्चय रक्खो कि जब समय आवेगा, तब तुम्हारी आकांक्षा व्यर्थ न होगी। धैर्य और श्रद्धा के साथ चले चलो। अपना मुख पूर्व की ओर किए रहो, जहाँ से कि उदीयमान सूर्य निकल रहा है।